बृहत् सूक्ति-कोश

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

सूक्तियों में नीति के वचन थोड़े शब्दों में गागर में सागर की भाँति बड़ी सुन्दरता से व्यक्त होते हैं। इनमें उपदेश देने की छटा निराली होती है। ये भावों को सजा-संवार कर सजीव बनाने एवं वक्तव्य कला को चमकाने में बड़ी सहायक होती हैं।

—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-६

खण्ड छह

वृहत् सूक्ति कोश

विश्व के लब्ध-प्रतिष्ठ मनीषियों की विशिष्ट सूक्तियों का संदर्भ-ग्रन्थ

सम्पादक

शरण

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन
२०५, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली
सर्वाधिकार : प्रकाशकाधीन
सम्पादक : शरण
संस्करण : १९७९
खण्ड : षष्ठ
मूल्य : दस रुपये
मुद्रक : प्रभात आफसेट प्रेस, नई दिल्ली-२।

VRIHAT SOOKTI KOSH : SHARAN : PART VI
(A Book of Quotations)
Rs. 10.00

आमुख

सूक्तियाँ विश्व साहित्याकाश के दैदीप्यमान उज्ज्वल नक्षत्र ही नहीं अपितु मानव के अन्तराल में व्याप्त उल्लास की तरंगों को उद्वेलित करने वाली ऐसी ज्योति हैं जिसके प्रकाश में बुद्धि और हृदय एक साथ आलोकित होते हैं। यदि ये न हों तो साहित्य नीरस हो जाए और हमारा हृदय स्वर्गिक आनन्द से वंचित हो जाए। जहाँ ये अपने माधुर्य से अन्धकार के आवरण को छिन्न-भिन्न करके उसे प्रकाशित कर सकती हैं, जहाँ ये निराशा के बंधनों में जकड़े हुए पत्रों में समीर की तीव्र गति डाल सकती हैं, जहाँ ये अन्तरतम की असह्य पीड़ा को क्षणमात्र में दूर कर सकती हैं; वहाँ ये गम्भीर से गम्भीर आघात पहुँचाने की भी क्षमता रखती हैं। इस पर भी यही कहना होगा कि ये सूक्तियाँ मानव सृष्टि में कल्पतरु के समान हैं।

इन सूक्तियों की विशाल छाया में विश्राम कर मानव अपने जीवन पथ की थकान को दूर कर भविष्य की दुर्गम यात्रा को शांतिपूर्वक पूर्ण कर लेता है। अतः ये सूक्तियाँ मानव जगत् में ईश के समान ही सर्वव्यापी बन गई हैं। इनकी उपदेशात्मक छटा निराली ही है। इनमें नीति के बचन अल्प शब्दों में गागर में सागर के समान अद्वितीयता से व्यक्त होते हैं। हमारी संस्कृत देव भाषा में तो इनका भण्डार है। अन्य विदेशीय भाषाओं में भी इन पर अच्छी पुस्तकें निकली हुई हैं। हिन्दी में भी इन सूक्तियों पर निकली हुई कई पुस्तकें देखने को मिलीं, पर सभी अपने में अपूर्ण-सी ही थीं। हिन्दी में इस कमी को दूर के लिए मैंने यह क्षुद्र सा प्रयास किया है। युग-युग के लब्ध प्रतिष्ठ मनीषियों की सूक्तियों के संकलन

में मेरे दस वर्ष बीते हैं। अब इन्हें कुछ-कुछ पूरा कर पाया हूं। अब मेरा प्रयास वृहत् सूक्ति कोश के रूप में आपके हाथ में है।

इस विशाल संदर्भ ग्रन्थ को पाठकों की सुविधा हेतु बारह खण्डों में विभाजित कर दिया है। वृहत् सूक्तिकोश का प्रत्येक खण्ड अपने में पूर्ण है। इसमें लगभग सभी लब्ध प्रतिष्ठ देशी-विदेशी विद्वानों, कवियों, विचारकों संतों एवं दार्शनिकों की मूल व अनूदित सूक्तियों के रूप में अमरवाणी का संकलन है। इसमें मैंने आधुनिक लेखकों की सूक्तियों को भी उसी आदर से संकलित किया है जिस सम्मान से प्राचीन विचारकों एवं लेखकों की सूक्तियों को। प्रत्येक खण्ड के अंत में विषयों की अनुक्रमणिका के साथ-साथ रचयिताओं की तालिका दे दी गई है। इससे पाठकों को विशेष सुविधा मिलेगी।

वृहत सूक्ति कोश का प्रत्येक खण्ड मेरे कृपालु पाठकों चाहे वे शिक्षार्थी हों, चाहे साहित्यकार हों, चाहे प्राध्यापक हों और चाहे राजनीतिज्ञ हों, के हाथों में से गुजरेगा, ऐसा मेरा अटूट विश्वास है। उनसे केवल मेरी सादर अनुनय यही है कि वे इनमें जो अपूर्णता एवं त्रुटि देखें उसके विषय में मुझे सूचित करने की कृपा करें। इनमें अधिक-से-अधिक संशोधन के लिए उदार भाव से मित्रों के परामर्श का स्वागत करूँगा।

विनीत

शरण

विषय-तालिका

न्यायाधीश

न्यायाधीश में चार बातें होनी चाहिएँ—शिष्टतापूर्वक सुनना, बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर देना, गम्भीर होकर विचार करना और निष्फल होकर न्याय करना।

—सुकरात

ऐसा न्याय करो जैसा न्याय किया था जहाँगीर ने।
ऐसा न्याय करो तुमजैसा न्याय किया तुलसी कबीर ने॥
न्याय-तुला पर सभी मुकदमे तुम सोने की तरह तोलना।
खाकर शपथ फैसला देना, तुम कुर्सी पर सत्य बोलना॥
हुकुम सुनाते समय गर्व तज पंचेश्वर! ईश्वर से डरना।
हमने तुम को पंच बनाया तुम हम परअन्याय न करना॥

—रघुवीरशरण मित्र (भूमि के भगवान)

पंच

पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। उसकी जबान सें खुदा बोलता है।

—प्रेमचन्द (पंच परमेश्वर)

रंक करै राउ अरु को करत रंक,
दूवल को मेटि देत आवति न अंच है।
काहू सों न सकै चाहै सोई करि सकै,
करि दया उपकार रहै पापन ते वंच है।।
तिन को गुपाल राजा सौंपि देति न्याउ,
तिन्हैं मांझ आप वोलै परमेश्वर हूँ संच है।
आवति न अंच अरु करत न रँच नहीं,
जानै परपंच तिन्हैं कहियतु पंच है।।
—गुपालराय (दंपतिवा क्या क्या विलास)

पंडित

पंडित हो तो सुनावहु वेदू। विन पूछे पाइय नहिं भेदू।।
हो वाह्मन औ पंडित्त, कहु आपन गुन सोइ।
पढ़े के आगे जो पढ़ै, दून लाभ तेहि होइ।।
—मलिक मुहम्मद (जायसी ग्रंथावली)

बूझ न पावे धर्म-मर्म वकवाद मचावे।
सार वस्तु को वचन-चातुरी में उलझावे।।
इस प्रकार का नहीं चाहिए हम को पंडित।
जो गौरव के लिए शास्त्र का गला दवावे।।
—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (पद्य प्रसून)

देश काल को देख चले मित्रता नहिं खोवे।
सार वस्तु को कभी पखडों में न डुवोवे।।
हमें चाहिए समझ बूझ वाला वह पंडित।
आंखें ऊंची रखे कूप-मंडूक न होवे।।
—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (पद्य प्रसून)

हम बड़ी बातों यानी किताबी बातों की चर्चा कर सकते हैं और स्वाभाविक बातचीत या मामूली बातें हमारे मुँह से ठीक तौर से नहीं निकलतीं, तो समझना होगा कि दैवयोग से हम पंडित, शिक्षक या उपदेशक तो हो गए हैं परन्तु हमारा भीतर का आदमी मर गया है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आवरण)

लाख मूर्ख तजि राखिए, इक पंडित बुधधाम।
सर शोभा इक हंस सों, लाख काक केहि काम।।

—विदुर

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय।।

—महात्मा कबीर

जिन पंडितों को परमार्थ का ज्ञान है उनका अपमान मत करो।

—भर्तृहरि

पक्ष-पक्षपात

आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः।
(सभी लोग अपने-अपने पक्ष का कल्याण चाहते हैं।)

—भारवि

पक्षपात सब बुराइयों की जड़ है। कहने का अभिप्राय: है कि यदि तुम एक के प्रति दूसरे की अपेक्षा अधिक स्नेह प्रदर्शित करते हो, तो विश्वास रखो, तुम भावी संकटों के बीज बो रहे हो।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत)

पछतावा

पछतावा डरपोकपन के लिए होता है शौर्य के लिए नहीं; वीरता कभी नहीं पछताती।

—अज्ञात

करता था तो क्यों किया, अब करि क्यों पछिताय।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाया॥

—महात्मा कबीर

पड़ोसी

सच्चा पड़ोसी वह नहीं जो तुम्हारे साथ उसी मकान में रहता है, बल्कि वह है जो तुम्हारे विचार-स्तर पर रहता है।

—रामतीर्थ

अपने पड़ोसी के विरुद्ध झूठी गवाही न दो।

—बाइबिल

पड़ोसी सू रूसणां, तिल-तिल सुख की हांणि।
पंडित भए सरावगी, पाणी पीवें छांणि॥

—महात्मा कबीर (कबीर ग्रन्थावली)

मारै सोइ निसोगा, डरै न अपने दोस।
केरा केलि करै का, जौं भा वेरि परोस॥

—मलिक मुहम्मद जायसी (जायसी ग्रन्थावली)

कहाँ खोजते फिरते प्रभु को, वह तो छिपा पड़ोसी घर।
मित्र भूल कर जिस पर तुमने, कभी न डाली नेह नजर॥

—श्रीमन्नारायण (रजनी में प्रभात का अंकुर)

अपने पड़ोसियों की निन्दा सनातन से मनुष्य के लिए मनोरंजन का विषय रहा है।

—प्रेमचन्द (लांछन)

पड़ोसी से प्रेम करने वाला मुसीबत में भी सुखी रहता है, जबकि पड़ोसी से वैर ठानने वाला सम्पत्ति में भी दुःखी होता है।

—अज्ञात

रक्खो पड़ोसियों का ध्यान, है विधर्मियों में भी ज्ञान।
यही चाहते हैं भगवान, भजें उन्हें बहु-विध संतान।।
दूर करो अनुचित आवेश, लो अजीत से कुछ उपदेश।
पकड़ भूत भावी के छोर, देखो वर्तमान की ओर।।

—मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दू)

पतन

अपने मित्रों और सहयोगियों की दृष्टि में पतित होकर जिंदा रहना श्रेय की वात नहीं।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

भोजन का अभाव ही हमारे नैतिक और आर्थिक पतन का मुख्य कारण है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

आत्मपतन को वह दार्शनिक की उदार दृष्टि से नहीं शुष्क योगी की दृष्टि से देखता है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

पति-पत्नि

औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है।

—प्रेमचन्द (गोदान)

जिसे पति बनना है, उसके लिए, पुरुष बनना बहुत ही आवश्यक है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मणिहीन)

पति चाहे भला हो, चाहे बुरा, स्त्री के सतीत्व गौरव के प्रमाण के लिए वह एक उपलक्ष्य मात्र है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कुमुदिनी)

हमारे यहाँ पुरुषों की आज्ञा मानना स्त्रियों का परम धर्म माना गया है। यदि पत्नी पति की आज्ञा न मानती तो वह भारतीय सती के आदर्श से गिर जाती।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

पुरुष को स्त्री पसन्द न आयी, वह और शादियाँ कर सकता है। स्त्री को पुरुष पसन्द न आया तो उसकी उम्र रोते ही गुजरेगी।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

स्त्री में कितने ही गुण हों; लेकिन यदि उसकी सूरत पुरुष को पसन्द न आयी तो वह उसकी नजरों से गिर जाती है, और उनका दाम्पत्य जीवन दुःखमय हो जाता है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

जब किसी पुरुष का एक स्त्री के साथ पति-पत्नी का-सा सम्बन्ध हो जाए, तो पुरुष का धर्म है कि जब तक स्त्री की ओर से कोई विरुद्ध आचरण न देखे, उस सम्बन्ध को निबाहे।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

कोई भी पति पत्नी को केवल पत्नी के नाते प्रेम नहीं करता, न कोई पत्नी पति को केवल पति के नाते प्रेम करती है। पत्नी में जो परमात्म तत्त्व है, उसी से पति प्रेम करता है, पति जो परमेश्वर है, उसी से पत्नी प्रेम करती है। प्रत्येक में जो ईश्वर तत्त्व है, वही हमें अपने प्रिय के निकट खींचता है। प्रत्येक वस्तु में और प्रत्येक व्यक्ति में जो परमेश्वर है, वही हमसे प्रेम कराता है। परमेश्वर ही सच्चा प्रेम है।

—स्वामी विवेकानन्द

पत्नी चाहती है कि पति को फुसलाकर अपनी शक्ति से प्रेम वसूल करे और यदि भला मनुष्य बनकर उतना भी अवसर न दे, तो समझना चाहिए कि उसका भाग्य ही फूटा है और पति का तो उससे भी बढ़कर।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मणिहीन)

पति-पत्नी पक्के और सच्चे साथी हैं। वे दोनों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुपार्थों की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयत्न करते हैं।

—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

कार्येषुमंत्री करणेषु दासी, भोज्येषु माता, रमणेषु रम्भा।
धर्मानुकूला, क्षमया धरित्री, भार्याच षाड्गुण्य वतीह दुर्लभा ।।

(कामकाज में मंत्री के समान परामर्श देने वाली, सेवादि में सेविका के समान काम करने वाली, माता के समान सुन्दर आहार कराने वाली, शयन के समय वेश्या के समान सुख देने वाली और धर्म के अनुकूल तथा क्षमादि गुण-धारण में वसुधरा के समान स्थिर रहने वाली, ऐसे छः गुणों से युक्त पत्नी दुर्लभ होती है।)

— अज्ञात

पति की प्रसन्नता में ही पत्नी का सौभाग्य है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कुमुदिनी)

पत्नी साधना की निधि है। वह अचल सम्पत्ति नहीं, सम्पदा है, अगाध रत्नरशि है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (विदा)

पति जाति के मुख में चुरुट की आग के अतिरिक्त और किसी प्रकार की आग लगाना या उसकी कल्पना करना कमसे कम स्त्री जाति के लिए तो कभी किसी दशा में शोभा नहीं देता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दीदी)

विश्व में साधारण तौर पर पत्नी को पति पहचानता है, कदाचित पति को पत्नी उससे कहीं अधिक पहचानती है। किन्तु पति की प्रकृति यदि बहुत ही सूक्ष्म हो तो पत्नी की दूरबीन में वह सब की सब दिखाई नहीं देती।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मणिहीन)

पति सर्वस्व है, पति प्रियतम है, पति देवता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (अनाम)

पत्नी के लिए इस लोक और परलोक में एक मात्र पति ही सदा आश्रय देने वाला है। उसकी आत्मा भी उसकी सहायक नहीं होती है।

—शरण (सोना माटी)

भरे समाज में कोई सभ्य नारि किसी परपुरुष को पति नहीं कह सकती। यह सच है कि मालती तुम्हारी पत्नी है और इसके साथ यह भी सच है कि इसका अतीत किसी गर्त में देखा है, पर वर्तमान को इसने ऐसी पतिव्रता के रूप में देखा है, जो स्वयं को पति की अंकाश्रिता समझती है। जैसे वृक्ष के सहारे कोई बेल बढ़ रही हो, वैसे ही, एक छाया है, अनुगामिनी है,अवलम्बिता है, उसका कोई निजी अस्तित्व नहीं है, वह सहचरी नहीं अपितु अनुचरी है। ऐसी पत्नी को कलंकित कहना शोभनीय नहीं।

— शरण (सोना माटी)

पत्नी का स्थान पति की गोद में है प्रेमी की नहीं।

—शरण (सोना माटी)

गंगा के स्रोत में जैसे इन्द्र का ऐरावत परेशान हुआ था, ठीक वैसे ही पत्नी की हंसी के सामने बड़े-बड़े काव्य के टुकड़े और प्रेम के अच्छे-अच्छे सम्भाषण पल में अपने स्थान से गिरकर चूर-चूर हो जाया करते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (निशीथ में)

पति को अपने हृदय और मन को अर्पण न कर देना घोर पाप है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कुमुदिनी)

सुयोग्य पति पत्नी को सम्मान की अधिकारिणी बना देता है।

—मनु

पति वह प्लास्टर (लेप) है जो युवतियों के कुंआरेपन की सभी बीमारियों को अच्छा कर देता है।

—मोलिएरी

पत्नी के चुनाव में युद्ध की योजना के समान सिर्फ एक बार गलती करना हमेशा के लिए मिट जाना है।

—मिडिलटन

सास्वीनां हि स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते।
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते॥

(जो सत्य, सदाचार, शास्त्रों की आज्ञा और कुलोचित मर्यादा में स्थित रहती है, उन साध्वीस्त्रियों के लिए एकमात्र पति ही परम पवित्र एवं सर्वश्रेष्ठ आश्रय है।)

—वाल्मीकि

पत्नी के चुनाव में किसी सच्चरित्र माता की पुत्री को पसन्द करो।

—फुलर

जा संग ब्याह होत जग माहाँ । पंथ निबाहत सो धरि बाहाँ ।।
जनम संघाती होत सो जाके संग वियात ।
जैस परै तस अँगवै, धन को करे निबाह ।।

—नूर मुहम्मद (इन्द्रावती)

पति को जो वास्तव में धर्म समझकर, परलोक की वस्तु समझ कर ग्रहण कर सकी हैं, उसके पैरों की बेड़ी चाहे तोड़ दो और चाहे बंधी रहने दो, उसके सतीत्व की परीक्षा अपने आप ही हो गई, समझ लो।

—शरच्चन्द्र (गृहदाह)

पति को जिस स्त्री ने हृदय से धर्म के रूप में विचारना नहीं सीखा, उसके पाँवों की जंजीर चाहे सदैव बँधी ही रहे, चाहे खुल जाय और अपने सतीत्व के यान को वह चाहे जितना भी वड़ा क्यों न समझती हो, परीक्षा के दलदल में पड़ने पर उसे डूवना ही पड़ेगा। वह आवरण के अन्दर भी डूवेगी और वाहर भी डूवेगी।

—शरच्चन्द्र (गृहदाह)

यदि यह कहा जाय कि विश्व के किसी देश अथवा जाति में सम्वन्ध के विचार से पत्नी की अपेक्षा माता अथवा वहन अधिक प्रिय होती है, तो यह बात सुनने में तो वहुत भली लगेगी; किन्तु वास्तव में ऐसा कहना मिथ्या ही होगा।

—शरच्चन्द्र (नारी मूल्य)

पत्नी की दृष्टि में अश्रद्धेय और हीन होने से वढ़कर दुर्भाग्य दुनिया में और है ही नहीं।

—शरच्चन्द्र (अधिकार)

नारी में योग्यता होनी चाहिए कि वह अच्छे पति का निर्माण कर सके।

—बालजक

पति-पत्नी का अधिकार समान है। यह सत्य है, किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि सत्य-सत्य चिल्लाने वाले एक सत्य विलासी गिरोह ने स्त्री-पुरुष के मुख से और भाँति-भाँति के आन्दोलनों से उस सत्य को इतना गंदा कर दिया है कि आज उसे मिथ्या कहने को जी चाहता है।

—शरच्चन्द्र (अधिकार)

सत्य न तो पति को त्यागने में है, और न तो पति की दासी वृत्ति करने में, ये दोनों ही केवल दायें-वायें की राह हैं, गन्तव्य स्थान तो स्वयं ढूँढ़ लेना पड़ता है, तर्क द्वारा उसका पता नहीं लगाया जा सकता।

—शरच्चन्द्र (शेष प्रश्न)

पति को त्याग देना कोई वड़ी वात नहीं, उसे फिर से पाने की साधना ही पत्नी के लिए परम सार्थकता है। अपमान का प्रतिशोध लेने में ही पत्नी की वास्तविक मर्यादा नष्ट होती है, अन्यथा वह तो कसौटी है जिस पर जाँच कर प्रेम का मूल्य आँका जा सकता है।

—शरच्चन्द्र (शेष प्रश्न)

दुनिया घूम कर मैंने वहुतेरी वस्तुओं की थाह पाई है, पर नहीं पाई यदि किसी की तो इस पति-पत्नी के प्रेम तत्त्व की। 'असम्भव' शब्द कदाचित् इन्हीं के कोष में नहीं लिखा।

—शरच्चन्द्र (अधिकार)

पति हमारे लिए धर्म हैं, इसी से वे नित्य हैं। जीवन में भी नित्य हैं मृत्यु में भी नित्य। उन्हें तो हम बदल नहीं सकतीं।

— शरच्चन्द्र (गृहदाह)

पति के विरुद्ध कभी विद्रोह का स्वर मन में नहीं लाना चाहिए। किन्तु पति भी मनुष्य है और मनुष्य की भगवान् के रूप में पूजा करनी केवल निष्फल ही नहीं, इससे पत्नी की भी और पति को भी छोटा वना देती है।

—शरच्चन्द्र (पत्रावली-लीलारानी गंगोपाध्याय)

पति के अलावा स्त्रियों को सचमुच दुःख और कोई नहीं दे सकता।

—शरच्चन्द्र (श्रीकांत, पर्व ४)

यदि कहीं दूर से जल लाने की आवश्यकता होगी, तो कोई फ्रांसीसी अथवा अंग्रेज स्वयं जाकर जल लायेगा। किन्तु हम तो यह काम करते हुए मारे शर्म के मर ही जायेंगे और इसके बदले में अपनी गर्भवती पत्नी के कंकाल पर एक बड़ा-सा घड़ा लादकर उसे जलाशय की ओर भेजकर शर्म का निवारण करेंगे।

—शरच्चन्द्र (नारी का मूल्य)

जिस देश में मधुर रस की धारणा जितनी ही क्षीण होती है और बंधन जितना ही क्षण स्थायी और भग्नप्रवण होता है, उस देश में पति-पत्नी का पारस्परिक सम्वन्ध भी उसी अनुपात में और उतना ही होता है।

—शरच्चन्द्र (नारी का मूल्य)

अगर पति ने पत्नी की गोद में कराह-कराह कर प्राण त्याग किए हैं तो उसे संतोष होता है कि मैंने उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। शोकाकुला हृदयों को इससे ज्यादा सांत्वना और किसी बात से नहीं होती। उसे इस विचार से कितना संतोप होता है कि मेरे स्वामी मुझे से प्रसन्न हो गए, अन्तिम समय तक उनके हृदय में मेरा प्रेम बना रहा।

——प्रेमचन्द (निर्मला)

पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पतिनी विनु मंद।
चन्द विना ज्यों जामिनी, ज्यों बिन जामिन चंद॥

—केशवदास (रामचन्द्रिका)

पतिव्रत यदि पुण्य तत्त्व है, पत्नीव्रत क्यों नहीं धर्म है ?
नर-नारी की एक आत्मा, मन है सदृश, समान कर्म है॥

एक जान कर भी मन-चाहे मुक्त भोग का अधिकारी है।
और विवशता से अभिशापित तो भी व्यभिचारिन नारी है।।

—शरणबिहारी गोस्वामी (पाषाणी)

वारि विहीन मीन रह सकती।
विधु-वियोग ज्योत्स्ना सह सकती।।
रूप विना रह सकती छाया।
रह सकती पति विना न जाया।।
अर्द्धांगी नर की नारी है। वह कभी न उससे न्यारी है।

—मैथिलीशरण गुप्त (कविता कलाप)

दारा मरै गृहस्थ की, खाना तिसे खराव।
राखै राँड फकीर जों, रहै न तिनकी आव।।

—गिरिधर (कुंडलियां)

घरनियाँ हैं सभी सुखों की जड़, रूठ सुख-सोत वे सुखायें क्यों।
निज कलेजा निकाल देवें जो, वे कलेजा कभी कंपायें क्यों।।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (चुभते चौपदे)

नारी तजै न आपनो सपनेहु भरतार।
पुंगु गुंग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार।।
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी।
बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन जड़ जोगी।
कलही कोढ़ी भीरू चोर ज्वारी व्यभिचारी।
अधम अभागी कुटिल कुमति पतितजै न नारी।।

—केशवदास (रामचन्द्रिका)

पति वास्तविकता है। वही टिकता है, वह सपना नहीं है कि उड़ जाय।

—जैनेन्द्रकुमार (इतस्ततः)

पति के मन में प्रेमी का मान हो। ईर्ष्या और विग्रह का उचित माना जाना समाप्त हो जाए। उसी तरह पत्नी में पति की प्रेयसी के लिए

आदर ही चलना चाहिए। सौतिया डाह की भी यदि परम्परा है तो मानना चाहिए कि वह बर्बर युग की है। उसमें मनुष्यता नहीं पशुता है।

—जैनेन्द्रकुमार (इतस्ततः)

पति-पत्नी सम्बन्ध विग्रह के बीच संधि के लिए एक स्थायी भूमिका देता है।

—जैनेन्द्रकुमार (इतस्ततः)

पत्नी सम्बन्ध विग्रह के बीच संधि के लिए एक स्थायी भूमिका देता है।

—जैनेन्द्रकुमार (इतस्ततः)

पति न्याय-अन्याव कुछ भी करें, उनके प्रेम की उपेक्षा करने की किसी देश की स्त्रियों में नहीं है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उस वस्तु के खोने से मरना कहीं अच्छा है—उसके खोये जाने के बाद भी पत्नी का जीवित रहना केवल विडम्बना है।

—शरच्चन्द्र (दर्प चूर्ण)

मैं (निर्वासिता पत्नी) आपसे यह बात जानना चाहती हूँ कि पति जब एक मात्र बेंत के ज़ोर से स्त्री के समस्त अधिकारों को छीन लेता है और उसे अंधेरी रात्रि में अकेली घर के बाहर निकाल देता है, तब इसके बाद भी विवाह के वैदिक मंत्रों के ज़ोर से उस पर पत्नी के कर्तव्यों का दायित्व बना रहता है अथवा नहीं।

—शरच्चन्द्र (श्रीकांत पर्व २)

भाण्डार ! पत्नी के राज्य की वही तो राजधानी है।

—शरच्चन्द्र (गृहदाह)

पति-प्रेम से वंचित होकर स्त्री के उद्धार का कोई उपाय नही। पति ही स्त्री का सर्वस्व है। जिसने अपना सर्वस्व खो दिया उसे सुख कैसे मिलेगा।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

अपने पतियों को सही रास्ते पर लाने में आज की पत्नियों का इतना समय बीत जाता है कि उन्हें स्वयं सही रास्ते पर आने का समय ही नहीं मिलता।

—फ्रेड शिलर

पति-भक्ति

हद से ज्यादा पति भक्ति औरपतिव्रता स्त्री के लिए गौरव का विषय हो जाता है, किन्तु पति के लिए वह आराम की चीज़ नहीं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मणिहीन)

एकै धरम एक व्रत नेमा। काय, वचन, मन पति-पद-प्रेमा।।

—तुलसीदास

कोकिलानाम् स्वरो रूपं नारी रूपं पतिव्रतम्।
विद्या रूपं कुरुपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम्।।

(कोकिला का स्वरही उसका सौन्दर्य है और स्त्रियों का सौन्दर्य उनका पतिव्रत धर्म है। कुरूपों का सौन्दर्य विद्या है और तपस्वियों का सौन्दर्य उनकी क्षमा है।)

—चाणक्य

पतिव्रता

झूठा पाट पटवरा रे झूठा दिखणी चीर।
सांचा पियाजी री गूदड़ी रे जामे निर्मल रहे शरीर।।
छप्पन भोग बुहाई दे हे इन भोगनि में दाग।
लूण अलूणो ही भलो हे अपने पिया जी साग।।

—मीराबाई (मीराबाई की पदावली)

जिस प्रकार मदारी जबरदस्ती साँप को बिल से निकाल लेता है उसी तरह पतिव्रता स्त्री पति को लेकर स्वर्ग लोक में पूजी जाती है।

—हितोपदेश

पतिबरता मैली भली, गले काँच की पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि-ससि की जोत॥

—महात्मा कबीर

पतिवरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप॥

—महात्मा कबीर

पतिबरता पति को भजै, और न आन सुहाय।
सिंह-बच्चा जो लंघना, तो भी घास न खाय॥

—महात्मा कबीर

सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिवरता के तन नहीं, सुरति बसै मन माहिं॥

—महात्मा कबीर

आर्य कन्या मान लेती स्वप्न में भी पति जिसे,
भिन्न उससे फिर जगत में और भज सकती किसे?

—मैथिलीशरण गुप्त (रंग में भंग)

जिसे पतिव्रत जैसा साधन मिल गया है उसे और किसी साधन की क्या आवश्यकता है? इसमें सुख संतोष और शांति सब कुछ है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

पत्र

मेरे विचार में विद्वत्जनों के पत्र, मानव के समस्त कथनों से श्रेष्ठ हैं।

—फ्रांसिसी ब्रेकन

प्रेम-पत्र पढ़ने के लिए लोग भोजन भी त्याग सकते हैं।

—जी० जे० नाथन

जब तक संसार में पत्रवाहक है तब तक जीवन में उत्साह है।

—डब्ल्यू जेम्स

एक नारी के पत्र से बढ़कर पृथ्वी पर कुछ नहीं है।

—बायरन

पत्र लिखना समय नष्ट करने का सबसे दिलचस्प तरीका है।

—विस्काउण्ट मोस्ले

पर-घर

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भौ धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर-घर गए रहीम॥

—रहीम

परतंत्र

मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है—विवश है। वह कर्त्ता नहीं है; वह केवल साधन है।

—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा)

ईश्वरः सर्वभूतानाम् हृद्देशेऽर्जुन तिष्टति।
भ्रामयन्सर्वं भूतानि यन्त्रारूठानि मायया॥

(हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में वास करता है और अपनी माया के बल से उन्हें चाक पर चढ़े हुए घड़े की तरह घुमाता है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

लायी हयात आए, कजा ले चली चले।
अपनी खुशी न आये, न अपनी खुशी चले॥

—ज़ौक

मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है।

—जयशंकर प्रसाद

परनारी

पर नारी राता फिरै. चोरी बिढ़ता खांहि ।
दिवस चारि सरसा रहैं, अंति समूला जांहि ॥

—महात्मा कबीरदास (कबीर ग्रंथावली)

जननी सम जानहिं पर नारी ।
धनु पराव विष तें विष भारी॥

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

रघुवंसिह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पगु धरइ न काऊ।
मोहि अतिसय प्रतीत मन केरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहि पावहिं परतिय मन दीठी।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरवर थोरे जगमाहीं॥

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

तोहि कहौं सुन बात निशाचरि तू जननी मेरी तब ही ते ।
काम को भाव धरै मन में रघुवीर के तीर गई जब ही ते॥
कै अब जाहि तहिं प्रभु पैं चल आस तजौ हमरी अब ही ते।
जो चल पूरब कों तटनी नटनी उलटी न वही कब ही ते॥

—हृदयराम (हनुमन्नाटक)

पर-तिय-रत रावन वध्यौ, पर-धन-रत तिमिकंस ।
राम-कृष्ण जय सूर ससि, करन मोह-अघ-धंस॥
पर-नारी पैनी छुरी, ताहि न लाओ अंग ।
रावन हू को सिर गयो, पर नारी के संग॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु नाटकावली)

जैबो न लायक लाल उतै पर दारन के बिच धर्म विचारी ।
आये इतै मुनि शासन लै नहि जानी रही मरजाद हमारी॥

रीति है धर्म धुरीनन की रघुवंसिन की जग जाहिर भारी।
पीठि परै नहिं संगर में नहिं दीठि परै स्वपन्यो परनारी॥

—रघुराजसिंह (राम स्वयंवर)

व्यास पराई कामिनी कारी नागिन जान।
सूँघत ही मरि जायगो, गरूड़ मंत्र-नहि मान॥

—व्यास (व्यासवाणी)

व्यास पराई कामिनी, लहसनि कैसी बानि।
भीतर खाई चोरि के, बाहिर प्रकटी आनि॥

—व्यास (व्यासवाणी)

अपनो परतख देखिकै, जैसा अपनै दर्द।
तैसा ही पर नारि का, दुखी होत है मर्द॥

—बुधजन (बुधजन सतसई)

पार की ही नारि सेती प्यार कियो रावण नै,
ताही को हवाल देखि मन माँहि डरियै।
फेर जिण कीयौ प्यार सोइ तौ खुवार हुऔ,
मिले नहीं जोग तो जंजाल माँहि पड़ीयै।
तन धन नेकी नाम ताही की तो हाणी होत,
फेर सांई सुं विमुख एह ठीक घरीयै।
'प्रदय' कहत मीत वार-वार कहौं तोहि,
पार की ही नारि खेती प्यार ही न करीयै॥

—उदैराज (स्फुट पद)

पर-पीड़ा

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
(सब भूतों का अन्तरात्मा-परमात्मा एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रतीत होता है।)

—कठोपनिषद्

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

—तुलसीदास (मानस)

यदि तुम्हारे एक शब्द से भी किसी को पीड़ा पहुँचती है, तो तुम अपनी सब नेकी नष्ट हुई समझो।

—संत तिरुवल्लुवर

स्वपीड़ा सह लेना और अन्य जीवों को पीड़ा पहुँचाना, यही तपस्या का स्वरूप है।

—संत तिरुवल्लुवर

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥

(अठारहों पुराणों में वेदव्यास जी ने केवल दो बातें कही हैं। परोपकार करके पुण्य कमाया जाता है और दूसरों को कष्ट पहुँचा कर पाप।

—अज्ञात

परमात्मा

परमात्मा ही सबके नेत्रों से दूसरों की ओर देखता है।

—गुरु अर्जुनदेव

परमात्मा सच्चाई है और रोशनी उसकी छाया।

—प्लेटो

परमात्मा अपने प्रेम में परिमित को ग्रहण करता है, और मनुष्य अनन्त को।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

तस्मिन ह तस्थुर्भुवमानि विश्वा।
(उस परमात्मा में ही सम्पूर्ण लोक स्थित है।)

—यजुर्वेद

जब तक तुम्हारी भूख, तुम्हारी इच्छा उतनी ही तीव्र नहीं है तब तक तुम परमात्मा को कदापि नहीं पा सकते चाहे तुम कितना ही बौद्धिक व्यायाम अथवा कर्मकाण्ड करो।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

परमार्थ

कोल्हू को कठिन भार काठ औ कबार तापै,
कांधे पै संभार धायो तिन भुस खाय खाय।
सूधो चलतो तौ होतीं मंजिलें विपुल पार,
नन्दीपुर जाय हर खातो सुख पाय-पाय।
होनहार नाहीं इन तिलन में तेल नेक,
'पूरन' सचेत होहु भित चित हित लाय।
अजहुँ चखन खोलि सोच तो अनारी भला,
केती गैल काटी बैल रातौ दिन धाम धाय।।

—रामदेवीप्रसाद 'पूर्ण'

परमार्थी

इस विशाल भारतवर्ष के विराट् जन-समाज में और भी एक श्रेणी के लोग हैं जो जप-तप और ध्यान-धारण के लिए मानव को त्याग कर, घर गृहस्थी को गरीबी और दुःख के हाथ सौंपकर परमार्थ कमाने चल देते हैं। इन असंख्य उदासीनों के लिए, इन मोक्षकामियों के जीने के लिए अन्न वे ही जुटाते हैं जो उनके मत से मोहग्रस्त और संसार में आसक्त हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (महात्मा गांधी)

परलोक

यहाँ पधारे तब आप नग्न थे,
वहाँ सिधारे तब मोह-मग्न थे,
अपाय से जीवन में न मुक्त थे,
उपाय क्या सार्थक मृत्यु के परे ?

—अनूप (वर्द्धमान)

परम्परा

परम्परा इतिहास को विशेष सहयोग प्रदान करती है, लेकिन उसकी बातों का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण कर तभी हमें उसपर विश्वास करना चाहिए।

—एडीसन

जीवित परम्परा आत्महीन नहीं होती, वह समाप्त नहीं होती। उसमें नाना रूपों और प्रारूपों में खिलते जाने की शक्ति प्रवाहित रहती है।

—जैनेन्द्र (इतस्ततः)

परहित (दे॰ परोपकार)

परहित बस जिनके मन मांही। तिन्ह कहुं जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।
परहित सरिस धरम नहिं भाई।

—तुलसीदास (मानस)

परहित निरत निरन्तर मन-क्रम वचन नेम निबहौंगो।

—तुलसीदास (मानस)

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं, ऐसे नर निकाय जग अहहीं।
वचन परमहित सुनत कठोरे, सुनहिं जे कहहिं, ते नर प्रभु थोरे ।।

—तुलसीदास (मानस)

परहित लागि तर्जाहिं जो देही। संतत संत प्रशंसहि तेही ॥

—तुलसीदास (मानस)

कोई व्यक्ति सचाई, ईमानदारी तथा लोक-हितकारिता के राजपथ पर दृढ़तापूर्वक चलता रहे तो उसे कोई भी बुराई क्षति नहीं पहुँचा सकती।

—हरिभाऊ उपाध्याय

जिसमें दया नहीं है वह तो जीते जी ही मृतक के समान है। दूसरे का भला करने से ही अपना भला होता है।

—अज्ञात

पराक्रम

तदलं प्रतिपक्ष मुन्नतेरवलम्ब्य व्यवसायवन्ध्यताम्।
निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विपादेन समं समृद्धयः॥

(प्रगतिपथ के बाधक अनुत्साह का अवलम्बन करके पड़े रहना ठीक नहीं; क्योंकि समृद्धियाँ उत्साही पुरुप का आश्रय लेती हैं और अनुत्साही का परित्याग कर देती हैं।)

—भारवि

बिना पराक्रम के कोई पदोन्नति नहीं कर सकता।

—साइरस

पराजय

पराजय से सत्याग्रही और अहिंसक को निराशा नहीं होती। उससे तो कार्यक्षमता और लगन बढ़ती है। और सत्य से मनुष्य की बुद्धि परिष्कृत होकर उसका मार्गदर्शन करती है।

—महात्मा गांधी

हार की चोट बुरी होती है।

—प्रेमचन्द (शतरंज के खिलाड़ी)

पराजय क्या है ? कुछ नहीं, सिर्फ शिक्षा तथा अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति की ओर प्रथम पग है।

—वेन्डेल फिलिप

रियायत राजनीति में पराजय की सूचक है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

हार की लज्जा तो पी जाने की वस्तु है।

—प्रेमचन्द (गोदान)

पराधीन-पराधीनता

पर-भाषा, पर-भाव, पर-भूषन, पर-परिधान।
पराधीन जन की अहै, यही पूर्ण पहिचान॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई)

बाँधेहूँ पालन करै, अंकुसधर को नाग।
फिरत स्वान स्वाधीन निज, भरै न उदर अभाग॥

—दीनदयाल गिरि (ग्रंथावली)

पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक वन विषै, कनक पींजरे दीन॥

—दीनदयाल गिरि (ग्रंथावली)

शासन किसी पर जाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो।
सम्भव नहीं है किन्तु जो सर्वांश में वह इष्ट हो॥

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती)

पराधीनता में प्रकार का नहीं केवल मात्राओं का अन्तर है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

पुरुषों के अधीन स्त्रियां अपने देश की सेवा भी नहीं कर सकती हैं।

—मानसरोवर (शराब की दूकान)

परावीन रहकर अपना सुख शोक न कह सकता है।
यह अपमान जगत में केवल पशु ही सह सकता है।।
अपना शासन आप करो तुम यही शांति है सुख है।
पराधीनता से वढ़ जग में नहीं दूसरा दुख है।।

—रामनरेश त्रिपाठी (पथिक)

गुलामी के मानसिक, आत्मिक, शारीरिक आदि विभाग करना भ्रांतिकारक हैं। गुलामी केवल आत्मिक होती है, और दशाएं इसीके अन्तर्गत हैं। मोटर, बंगले, पोलो और प्यानो ये एक वेड़ी के तुल्य हैं। जिसने इन वेड़ियों को नहीं पहना उसी को सच्ची स्वाधीनता का आनन्द-प्राप्त हो सकता है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

पराधीनता से बढ़कर विडम्बना और क्या है ?

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त)

पराधीनता दुर्गुणों को जगाती है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

पराधीनती एक ईश्वरीय विधान का रूप धारण कर लेती है जिसमें विकास और जागृति का मंत्र छिपा हुआ है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

पराधीनता दण्ड नहीं है, यह शिक्षालय है, जो हमें स्वराज्य के सिद्धांत सिखाता है, हमारे पुराने कुसंस्कारों को मिटाता है, हमारी मुँदी हुई आँखें खोलता है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

इन्द्रियों की गुलामी पराधीनता से कहीं अधिक दुःखदायिनी होती है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

विना देशाटन किए अपनी पराधीनता का यथेष्ट ज्ञान नहीं होता।

—प्रेमचन्द (प्रेमाश्रम)

राष्ट्रीय पराधीनता हमारे सहस्रों सामाजिक भेद-विच्छेदों के सहारे ही पनपती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (व्रत उद्यापन)

नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ।।

(मानव अपनी इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकता; क्योंकि वह पराधीन होने के कारण असमर्थ है। काल इसे इधर-उधर खींचता रहता है।)

—बाल्मीकि

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।

—तुलसीदास (मानस)

एतावज्जन्मसाफल्यं यदनायत्तवृत्तिता।
ये पराधीनतां यातास्ते वै जीवन्ति के मृताः ।।

(स्वाधीनता का होना ही जन्म की सफलता है और जो पराधीन होने पर भी जीते हैं तो मरे हुए कौन हैं ? अर्थात् वे ही मरे के समान हैं जो पराधीन रहते हैं।)

—हितोपदेश

यदि दास के गले के चहुँ ओर आप एक जंजीर बाँधते हैं तो उसका दूसरा किनारा स्वयं आपके ही गले में बँध जाएगा।

—एमर्सन

परामर्श

जो मानव नेक परामर्श देता है, वह एक हाथ से निर्माण करता है, और जो मानव उपयुक्त परामर्श के साथ-साथ दृष्टान्त भी देता है, वह दोनों हाथों से निर्माण करता है।

—बेकन

परिग्रह-परिग्रही

केवल सत्य की आत्मा की दृष्टि से विचारें तो शरीर भी परिग्रह है। भोग इच्छा के कारण हमने शरीर का आवरण खड़ा किया है और उसे टिकाये रखते हैं।

—महात्मा गांधी

परिग्रह का मतलब संचय या इकट्ठा करना है। सत्य-शोधक अहिंसक परिग्रह नहीं कर सकता।

—महात्मा गांधी

परमात्मा परिग्रह नहीं करता, वह अपने लिए आवश्यक वस्तु रोज-रोज पैदा करता है।

—महात्मा गांधी

जो विचार हमें ईश्वर से विमुख रखते हैं, या ईश्वर की ओर नहीं हो जाते, वे सब परिग्रह में शुमार होते हैं और इसलिए वे त्याज्य हैं।

—महात्मा गांधी

सच्ची संस्कृति-सुधार और सभ्यता का लक्षण परिग्रह की वृद्धि नहीं, वल्कि विचार और इच्छापूर्वक उसकी कमी है। जैसे-जैसे परिग्रह कम करते हैं वैसे-वैसे सच्चा सुख और सच्चा संतोष वढ़ता है। सेवा क्षमता वढ़ती है।

—महात्मा गांधी

जो मनुष्य अपने दिमाग में निरर्थक ज्ञान ठूंस रखता है वह परिग्रही है।

—महात्मा गांधी

परिचय

किसी को अपना परिचय देना वुरा नहीं है, वुरा तभी है जब वह किसीस्वार्थ या अहंकार से दिया जाता है।

—अज्ञात

परिचय सम्पूर्ण जाति अथवा राष्ट्र के जीवन-यज्ञ में जलाई हुई अग्नि-शिला के समान है। उसी से जलती है उसकी भावी काल की मशाल और उसके भावी काल के घर का प्रदीप।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साहित्य का तात्पर्य)

परस्पर परिचय का अभाव ही मानव के प्रभेद को बड़ा बना देता है। जब अन्तर का परिचय नहीं होता तब बाहर के अनैक्य पर ही दृष्टि पड़ती है और उससे पद-पद पर अवज्ञा का संचार होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (चयन)

सब के प्रति सौजन्य और बहुतों से रक्खो राम-सलाम।
मेल-जोल थोड़े लोगों से, मैत्री किसी एक जन से॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (नये सुभाषित)

परित्यक्ता

वही पीड़ा, जो बाल विधवा सहती है और सहने में अपना गौरव समझती है, परित्यक्ता के लिए असह्य हो जाती है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

घर से निकली हुई त्रिया, थान से छूटी हुई घोड़ी है जिसका कुछ भरोसा नहीं।

—प्रेमचन्द (निर्वासन)

परित्याग

जिसका सबने परित्याग कर दिया, वह अपनी आत्मा में एक क्षण के लिए भी परित्यक्त नहीं है, पथ ही जिसका घर है, उनके अन्तर के आश्रय को कोई महाशक्तिवान् अत्याचारी भी, एक मुहूर्त के लिए भी नहीं छीन सकता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (तीर्थ)

परिणय

सकल वस्तु परिणति के पथ पर है, किन्तु फिर भी किसी वस्तु की परिसमाप्ति दिखाई नहीं देती।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (परिणय)

परिणाम (द्र० फल)

कल्याण का यह अर्थ भी नहीं है कि परिणाम के सम्बन्ध में लापरवाही रहे। परिणाम और साधन का विचार और उसका ज्ञान अत्यावश्यक है।

—महात्मा गांधी

परिवर्तन

पुरुष का परिवर्तन पुरुष में ही होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा)

परिवर्तन ही सृष्टि है, जीवन है। स्थिर होना मृत्यु है। निश्चेष्ट शान्ति मरण है। प्रकृति क्रियाशील है।

—जयशंकर प्रसाद

जीवन ऋतु में परिवर्तन स्वाभाविक है।

—अज्ञात

हम परिवर्तमान नित्य नये हैं सभी।
ऊब ही उठेंगे कभी एकस्थिति में सभी ।।

—मैथिलीशरण गुप्त (नहुष)

कल की गंगा ? बह कर कितना आगे चला गया है पानी।
फिर भी उसको वही समझने की करता नर है नादानी ।।

—शरणबिहारी गोस्वामी (पाषाणी)

परिवर्तन है प्राण प्रकृति के अविकल क्रम का।
परिवर्तन-क्रम मर्म है निगमागम का॥
परिवर्तन है हरि सृष्टि के सौन्दर्यों का।
परिवर्तन है वीज विश्व के आश्चर्यों का॥
निभ सकता नहिं प्रकृतधर्म-क्रम परिवर्तन विन।
चल सकता नहिं प्रगति-कर्म-क्रम परिवर्तन विन॥
पाय तत्त्व का ज्ञान तथ्य को स्यीय वना ले।
परिवर्तन-आदर्श आशुता से अपना ले॥

—श्रीधर पाठक (भारत गीत)

देखो यह जग का परिवर्तन!
रहती थी नित्य वहार जहाँ,
वहती थी रस की धार जहाँ,
था सुषमा का संसार जहाँ,
है वहाँ आज वस ऊजड़ वन।
देखो यह०
था जहाँ प्रेम-सागर मन में,
सुख की सरिता थी जीवन में,
गायन था उर के स्पन्दन में,
है वहाँ भयंकर सूनापन।
देखो यह०

—ठाकुर गोपालशरण सिंह (आधुनिक कवि)

अरे यह परिवर्तन का चक्र, चला ही करता है दिन-रात।
रोज ही होता दिन का अन्त, रोज ही होता दिव्य प्रभात,
वदलती ही रहती है सृष्टि, चक्र चलता रहता अविराम।
जिसे तुम वतलाते हो मृत्यु, वही तो नव जीवन का नाम॥

—मनोरंजन (गुनगुन)

वे दीप वदलने होंगे जिनकी ज्योति पुरानी हो आयी,
फूँको तो वे विजलियाँ जीर्ण जिनमें निष्प्राण चमक छायी,
तुम आज बुढ़ापे की रग-रग में खून जवानी का भर दो,
तुम नूतन अभियानों से ये चिर जर्जर मार्ग वदल डालो।

—रामेश्वर शुक्ल अंचल (विराम चिह्न)

एक सौ वर्ष, नगर उपवन।
एक सौ वर्ष, विजन वन॥
—यही तो है असार संसार।
सृजन, सिंचन, संहार॥
आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार।
रत्न दीपावलि, मंत्रोच्चार॥
उलूकों के कल भग्न विहार।
झिल्लियों की झन्कार॥
दिवस निशि का यह विश्व विशाल।
मेघ मारुत का माया जाल॥

—सुमित्रानन्दन पंत (आधुनिक कवि)

युग वदला है, अब मन मनमानी नहीं चलेगी।
आदर्शों पर पाप-वृत्तियाँ नहीं पलेंगी॥
समझ जायेगा, उसका भलपन रह जायेगा।
वरना, जवरन, कानूनी डंडा खायेगा॥
इससे अच्छा है पहले ही, मन समझाओ।
वल वटोरकर, संयम का साधन अपनाओ॥
आँच लगे पानी को सहज उबलना होगा।
आज नहीं तो कल तक तुम्हें वदलना होगा॥

—सागरमल (कुछ कलियाँ : कुछ फूल)

परिवार

सुख सम्पति परिवार बड़ाई।
सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥
ए सब राम भगति के बाधक।
कहहिं संत तव पद अवराधक॥
शत्रु मित्र सुख-दुख जग माहीं।
माया-कृत परमारथ नाहीं॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस)

सुत-बनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह सब ही ते।
अंतहु तोहिं तजेंगे पामर, तू न तजै अब ही ते॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका)

अशिक्षित निर्धन रुग्ण अपांग।
बढ़ाते व्यर्थ करुण भू-भार॥
नरक क्यों बने न जन-भू स्वर्ग।
कहीं जब प्रजनन पर अधिकार॥

—सुमित्रानंदन पंत (लोकायतन)

नारी ! जिस समय तू अपने परिवार में लीन रहती है, उस समय तेरे अंगों से ऐसी रागिनी निकलती है जैसी पहाड़ी झरनों से निकलती है जब वे बिल्लौरों में से होकर क्रीड़ा करते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (घर-बाहर)

परिपूर्णता

इंसान की परिपूर्णता अपनी अपूर्णता से परिचित होने में है।

—आगस्टाइन

परिपूर्णता शनैः-शनैः मिलती है,उसे समय की आवश्यकता होती है।

—वाल्टेयर

छोटी-छोटी बातों से पूर्णता मिलती है, और पूर्णता कोई छोटी बात नहीं है।

—माइकेल एन्जिलो

परिमाण

परिमाण किसी भी व्यक्ति अथवा राष्ट्र की महानता की निकृष्टतम कसौटी है।

—जवाहरलाल नेहरू

परिश्रम-परिश्रमी

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।
(विना स्वयं परिश्रम किए देवों की मैत्री नहीं मिलती।)

—ऋग्वेद

परिश्रम से भागने वाला किसी न किसी तरह की चोरी अवश्य करता है। यदि नहीं करता तो भविष्य में करेगा।

—अज्ञात

परिश्रम की निज की प्रतिष्ठा इतनी है कि उसने महात्मा को प्रतिष्ठा दी।

—विनोबा भावे

प्रतिभा महान् कार्यों को शुरु करती है लेकिन परिश्रम ही उन्हें समाप्त करता है।

—जोवरी

जो अपने हिस्से का काम किए बिना ही भोजन पाते हैं वे चोर हैं।

—महात्मा गांधी

जग में पूजा ना मिले, बिना घिसाये चाम।
रगड़-रगड़ खाकर बने, पाहन शालिग्राम॥

—सत्यदेव परिव्राजक (अनुभव)

परिश्रम के विना उन्नति नहीं।

—सफोक्लीज

परिश्रम सभी पर विजयी होता है।

—होमर

परिश्रम हमारा देवता है।

—विनोबा भावे

मानवी जीवन में शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम के विना कोई फल प्राप्त नहीं होता। एकाग्रचित्त और महान् उद्देश्य वाला मानव जो करना चाहे सो कर सकता है।

—ऐरी शेफर

परिश्रमी के गृह द्वार को क्षुधा दूर से ताकती है पर अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती।

—अज्ञात

परिस्थिति

मनुष्य परिस्थिति का दास नहीं, अपितु परिस्थितियाँ मनुष्य की दासी हैं।

—डिज़राइली

मनुष्य परिस्थितियों का अनन्य भक्त है।

—जयशंकर प्रसाद (स्वर्ग के खंडहर)

मनुष्य परतंत्र है, परिस्थितियों का दास है।

—भगवतीचरण वर्मा

मानव परिस्थितियों की क्रीड़ा है जबकि परिस्थितियाँ ही मानव को क्रीड़ा प्रतीत होती हैं।

—बायरन

गम्भीर परिस्थिति ही महापुरुषों का विद्यालय है।

—महात्मा गांधी

पुरुपार्थ परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने में है।

—महात्मा गांधी

मनुष्य बिगड़ता है या तो परिस्थितियों से या पूर्व संस्कारों से। परिस्थितियों से गिरनेवाला मनुष्य उन परिस्थितियों का त्याग करने से ही बच शकता है।

—प्रेमचन्द

मानव के विषय में, हमें अपनी सारी युक्तियों में यह सिद्धान्त के रूप मान लेना होगा कि जिन्दगी का अधिकांश हिस्सा परिस्थितियों द्वारा बनता है।

—रावर्टहाल

स्वतंत्र बुद्धि के लोग भी एक हद तक यदि परिस्थिति के गुलाम नहीं होते तो कम से कम परिस्थिति द्वारा गढ़े जाते हैं।

—बिनोवा भावे

सारा आचार-विचार परिस्थितियों के अधीन है। आज तुम दीप्त हो, किसी मोटरकार को धूल उड़ाते देखते हो, तो ऐसा बिगड़ते हो कि उसे पत्थरों से चूर-चूर कर दो; लेकिन क्या तुम्हारे मन में कार की लालसा नहीं है? परिस्थिति ही विधि है, और कुछ नहीं।

—प्रेमचन्द (गोदान)

परीक्षा

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नो विशुद्धिः श्यामिकापि वा।

(सोने की विशुद्धता की परीक्षा अग्नि में होती है और उसके खोटेपन की भी।)

—रघुवंश

दातुश्चैव परीक्षा वै दुर्भिक्षे जायते नृभिः ।
शूरस्यैत्र तु संग्रामे मित्रस्य च तथापदि ।।
अशक्तो च तथा स्त्रीणाम् विपत्तौ सुकुलस्य च।
स्नेहस्य च परोक्षेण सत्यस्य संकटे गते ।।

(दाता की परीक्षा अकाल में, शूरवीर की युद्ध में, मित्र की आपत्काल में, पत्नी की निर्धनावस्था में, अच्छे कुल की मुसीबत में, प्रेम की परोक्ष में और सत्य की परीक्षा संकट के समय होती है ।)

—वेदव्यास (शिवपुराण)

जिस तरह कंचन को काटकर, तपाकर, घिसकर और पीटकर उसकी पहचान की जाती है, उसी तरह त्याग, शील, गुण और कर्म इन चार प्रकारों से मानव की भी परीक्षा की जाती है ।

—चाणक्य

विद्यार्थी की परीक्षा जब तक नहीं होती वह उसी की तैयारी में लगा रहता है, लेकिन परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के बाद भावी जीवन-संग्राम की चिन्ता उसे हतोत्साह कर दिया करती है। उसे अनुभव होता है कि जिन साधनों से अब तक मैंने सफलता प्राप्त की है, वह इस नए, विस्तृत, अगम्य क्षेत्र में अनुपयुक्त है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

परोपकार

परोपकार ही अमरत्व प्रदान करता है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

परोपकार के लिए मरने का सौभाग्य तो संस्कारवालों ही को प्राप्त है।

—प्रेमचन्द (कर्मभूमि)

जिस प्रकार पानी के बहाव से कभी-कभी बाँध टूट जाता है, उसी प्रकार परोपकार की इस उमंग ने स्वार्थ और माया के बाँध को तोड़ दिया है।

—प्रेमचन्द (ममता)

परोपकार के लिए कुछ जाल भी करना पड़े तो वह आत्मा की हत्या नहीं है।

—प्रेमचन्द

पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहि सुसंपति पाइ।

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्‌गमै ने वाम्बुभिर्मूरिविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वाभाव एवैष परोपकारिणाम ।।

(फल आने से वृक्ष झुक जाते हैं, नए बरसाती जल से भरे हुए मेघ खूब फैलकर झुक जाते हैं, समृद्धियों के आने से सज्जन पुरुष नम्र हो जाते हैं—परोपकारियों का यह स्वभाव है।)

—कालिदास (शकुन्तला)

जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा।

(उसी का जीवन सफल माना जाता है जो परोपकार में प्रवृत्त रहता है।)

—वेदव्यास (ब्रह्मपुराण)

जो गरीब सों हित करै, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।

—रहीम

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहिं न पानि।
कहि रहीमपरकाज हित,सम्पत्ति संचहि सुजानि।।

—रहीम

परोपकार का हरेक काम स्वर्गलोक की ओर एक पग है।

—एच० डब्ल्यू० बीचर

पर उपकार वचन-मन-काया।
संत सहज सुभाव खगरावा॥

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

ज्यों-ज्यों परोपकार के लिए रुपये की थैली खाली होती है त्यों-त्यों हमारा हृदय भरता जाता है।

—विक्टर ह्यू गो

परहित सरिस धरम नहिं भाई, पर पीरा सम नहिं अधमाई।

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

'रहिमन' रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
मीति आप पै डरि कै, सबै पियावै तोय॥

—रहिम (रहिमन विलास)

हरि भजि साफिल जीवन, पर उपगार समाइ।
दादू मरणां तहं त्रला, जहं पसु पंखी खाइ॥

—दादू (संत दादू और उनकी वाणी)

किए बिना कम पीर जगत की, जीवन भू पर एक भार है।
मानवता का धर्म भूलकर अंधकार ही अंधकार है॥

—श्रीमन्नारायण (रजनी में प्रभात का अंकुर)

स्वयं न सरि पीती अपना जल, स्वयं न तरु खाता अपना फल।
जन-जन का हित ही अभीष्ट हो, स्वयं शम्भु बन पियें हलाहल॥

—उमाकांत मालवीय (बाजी रणभेरी)

मान्य योग्य नहिं होत कोऊ कोरो पद पाए।
मान्य योग्य नर ते जे केवल परहित जाय॥
नर सरीर में रत्न वही जो पर दुख साथी।
खात पियत अरु स्वसत स्वान मंडुक अरु भाथी॥
तासों अबलौं करो, करो सौ, पै अब जागिय।
गोश्रुति भारत देस समुन्नति मैं नित लागिय॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु नाटकावली)

चातक को दुख दूर कियो पुनि दीनों सबै जग जीवन भारी।
पूरे नदी-नद ताल-तलैया किए सब भांति किसान सुखारी।।
सूखेहू रूखन कीनें हरे जग पूर्यौ महामुद दै निज बारी।
हे घन आसिन लौं इतनी करि रीते भए हूँ बड़ाई तिहारी।।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु नाटकावली)

वह शरीर क्या जिससे जग का कोई भी उपकार न हो।
वृथा जन्म उस नर का जिसके मन में दया-विचार न हो।।
उस जीवन से मृत्यु भली जिस में यौवन का ज्वार न हो।
पत्थर है वह हृदय अरे जिसमें लहराता प्यार न हो।।
यों तो सभी मरण के राही, एक रोज मर जाते हैं।
किन्तु धन्य वे जो मर कर भी बंधु, नाम कर जाते हैं।।

—आरसीप्रसाद सिंह (आरसी)

जन, समष्टि में रमो, व्यष्टि को विकसित करके,
निज हित होगा स्वयं सफल सब का हित करके।।

—मैथिलीशरण गुप्त (राजा-प्रजा)

अपना उपकार ही दूसरों का उपकार है। जो अपना उपकार नहीं कर सकता, वह दूसरों का उपकार क्या करेगा?

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

स्व-प्राण से या धन के प्रदान से।
निवाहता जो कि परोपकार है।।
धरित्रि में सो नर धन्य अन्यथा।
कभी न देता धन साथ प्राण का।।
परोपकारार्थ प्रसून फूलते।
परोपकारार्थ फली प्ररोहते।।
परोपकारार्थ नदी गवादि है।
परोपकारार्थ शरीर साधु का।।

—अनूप (वर्द्धमान)

फिर गया था सिर उमर खैयाम का, जिसने कहा,
आज आओ मौज कर लें, कल तो मरना है हमें।
साथियों, इतिहास का संदेश है वहुजन हिताय:॥
आज मर लें, मार लें, कल मौज करना है हमें॥

—विजयदेव नारायण (तीसरा सप्तक)

परोपकार ही धर्म है, पर पीड़न ही पाप।

—स्वामी विवेकानंद

पवित्र-पवित्रता

पवित्रता वह धन है जो प्रेम के वाहुल्य से पैदा होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (भावुकता और पवित्रता)

साधना की सामग्री तो पवित्रता ही है। उसकी वाहर से कोई दृष्टि नहीं होती, उसे तो अपने अन्तर से ही आकर्षण करना पड़ता है। यह पवित्रता ही हमारी मूल की वस्तु है और भावुकता पल्लव वाली।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (भावुकता और पवित्रता)

चरित्र के मूल से प्रत्यह पवित्रता लाभ करने से ही भावुकता भी हमें सहायता पहुँचा सकता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (भावुकता और पवित्रता)

प्रतिदिन अपनी उपासना में हमें सुगम्भीर तथा निस्तब्ध भाव में पवित्रता को ग्रहण करने के लक्ष्य से, अपनी चेतना को उद्वोधित करते रहना चाहिए।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (भावुकता और पवित्रता)

पवित्रता शब्द रुचि और अरुचि का वोधक है।

—जैनेन्द्र (काम, रूप, परिवार)

सरिता अपने उद्गम स्थान पर हमेशा अधिक पवित्र होती है।

—पैस्कल

देह जल से पवित्र होती है, मन सत्य से, आत्मा धर्म से और बुद्धिज्ञान से पवित्र होती है।

—मनु (मनुस्मृति)

तन को जोगी सब करैं, मन को बिरला कोय।
सहजै सब विधि पाइए, जो मन जोगी होय।।

—महात्मा कबीर

मन चंगा तो कठौती में गंगा।

—संत रैदास

जहाँ पवित्रता है वहीं निर्भयता हो सकती है।

—महात्मा गांधी

पवित्रात्मा

पवित्र आत्माएँ इस संसार में चिरकाल तक नहीं ठहरतीं।

—प्रेमचन्द

पशु

येषां न विद्या न तपो न दानं न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुविभार भूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

(जिनमें न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है और न जिन में शील, गुण और धर्म है, वे इस धरा पर भार रूप हैं। वे मानव रूप धारण कर पशु के समान विचरते हैं।)

—चाणक्य

साहित्य-संगीत-कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद् भागधेयं परमं पशुनाम्।।

(जिस व्यक्ति ने साहित्य और संगीत शास्त्र नहीं सीखा वह बिना पूंछ और सींग का साक्षात् पशु है। वह तृण खाये बिना ही जीता है, यह पशुओं का परम भाग्य है।)

—भर्तृहरि

गीता-युग के पहले कदाचित् यज्ञ में पशु हिंसा मान्य रही हो, पर गीता के यज्ञ में उसकी कहीं गंध तक नहीं है।

—महात्मा गांधी

पहाड़

पहाड़ के ऊपर की हरियाली देखकर किसे पता लग सकता है कि उसके हृदय में कैसी भयंकर अग्नि दहक रही है।

—अज्ञात

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा यात्राश्रिता हि तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदा श्रयेण ककोलनिम्वकुटजान्यपि चन्दनानि ।।

(उस स्वर्ण अथवा रजत के पर्वत से क्या लाभ जहाँ पैदा होने वाले वृक्ष यदि वैसे ही वृक्ष रह गए। हम तो मलयाचल को ही विशिष्ट मानते हैं जिस पर पैदा होने वाले ककोल, नीम और कुरैया के वृक्ष भी चन्दन के समान सुगन्धित हो जाते हैं।)

—भर्तृहरि

पाखण्डी

सदा शुद्ध अति जानकी, निंदक यों खलजाल।
जैसे श्रुतिहि सुभाव ही, पाखण्डी सब काल ।।

—केशवदास (रामचन्द्रिका)

अनार्यस्त्वार्य संस्थान: शौचाद्धीनस्तथा शुचि:।
लक्षण्यवधलक्षण्यो दु:शील: शीलवनिव ।।

(पाखण्डी अनार्य होकर भी आर्य के समान प्रतीत होता है, शौचाचार से हीन होकर भी स्वयं को पवित्र रूप में प्रगट कर सकता है, उत्तम लक्षणों से रिक्त होकर भी सुलक्षण-सा दृष्टिगत होता है और कुप्रवृत्ति का होकर भी दिखाने के लिए सुशील-सा आचरण कर सकता है।)

—वाल्मीकि

पागलपन

मनुष्यों का पागलपन असाधारण बात है, लेकिन गिरोहों, दलों, राष्ट्रों और युगों का पागलपन नियम है।

—नीत्शे

कोई भी पवित्रात्मा पागलपन के मिश्रण से मुक्त नहीं है।

—अरस्तू

पाठशाला

घर ही उत्तम शिक्षालय है। सफल पुरुष पाठशाला में नहीं, जीवन-शाला में अध्ययन करते हैं।

—जैनेन्द्र (जै० क० भा०२)

आजीविका का साधन शरीर है और पाठशाला चरित्र-निर्माण की जगह है। उसे शरीर की ज़रूरतें पूरी करने का साधन समझना, चमड़े की जरा-सी रस्सी के लिए भैंस को मारने के बराबर है।

—महात्मा गांधी

विद्यालय ही प्रजातंत्र की किलेबंदी है।

—होरेसमैन

जो मानव एक पाठशाला खोलता है वह विश्व का एक वन्दीगृह वन्द कर देता है।

—विक्टर ह्यूगो

पान

> ताम्बुलं मुखरोगनाशनिपुणं संवर्धनं तेजसो।
> नित्यं जाठरवह्नि वृद्धि जननं दुर्गन्धदोषापहं ॥
> वक्त्रालंकरणं प्रहर्षजननं विद्वन्नृपाग्रे रणे।
> कामस्यायतनं समुद्भवकरं लक्ष्म्याःसुखस्यास्पदं ॥

(पान मुँह की बीमारियों का नाशक है, तेज को बढ़ाने वाला है, उदराग्नि को रोज़ाना प्रदीप्त करनेवाला है, दुर्गन्ध का नाशक है, मुँह का अलंकार है, हर्ष को बढ़ानेवाला है, विद्वान्, नरेश और रणधरा के लिए मंगलदायी है, कामदेव का देवालय है, अभ्युदय-कारक है और यक्ष्मी का वास स्थल है।)

—अज्ञात

पाप

पाप की श्रेणियां क्या! फिर भी व्यक्ति का पाप क्षमा पा सकता है, सामाजिक पाप तो नहीं।

—सेरवान्ते

जो पाप करते उठा, या पुण्य गिनते गिरा—सच में पापी कौन?

—शेक्सपियर

संसार में दुर्बल और दरिद्र होना पाप है।

—प्रेमचन्द

अपने पापों पर पर्दा डालना अपने भविष्य पर पर्दा डालना है।

—अनाम

पाप इसलिए दुःखद नहीं है कि वह मना है, बल्कि इसलिए मना है कि वह दुःखद है।

—फ्रैंकलिन

पुण्य की कसौटी है पाप।

—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त)

तुम किसी कर्म को पाप नहीं कह सकते वह। अपने नग्न रूप में पूर्ण है, पवित्र है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त)

सर्वत्र यदि पापों का भीषण दण्ड तत्काल ही मिल जाया करता, तो यह सृष्टि पाप करना छोड़ देती।

—जयशंकर प्रसाद (आँधी)

प्रत्येक पाप के दण्ड की सीमा होती है।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल)

पाप और कुछ नहीं है, जिन्हें हम छिपाकर किया चाहते हैं, उन्हीं कर्मों को पाप कह सकते हैं।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल)

पाप का फल दुःख नहीं, किन्तु एक दूसरा पाप है।

मनुष्य जब एक बार पाप के नागपाश में फँसता है, तब वह उसी में और भी लिपटता जाता है।

—जयशंकर प्रसाद (जन्मेजय का नागयज्ञ)

पाप का रूप जब वासना को फाँसकर अपनी ओर मिला चुकता है, बड़ा कोमल अथच कठोर एवं भयानक होता है। और तब पाप का मुख कितना सुन्दर होता है। सुन्दर ही नहीं, आकर्षक भी, वह भी कितना प्रलोभनपूर्ण और कितना शक्तिशाली जो अनुभव में नहीं आ सकता। उसमें विजय का दर्प भरा रहता है।

—जयशंकर प्रसाद (प्रतिध्वनि)

मेहरिया रख लेना पाप नहीं है, हाँ रखके छोड़ देना पाप है।

—प्रेमचन्द (गोदान)

बैरी को मारने में पाप नहीं, छोड़ने में पाप है।

—प्रेमचन्द (गोदान)

संकट की चीज़ लेना पाप हैं।

—प्रेमचन्द (गोदान)

जो लोग वेश्याओं को बुलाते हैं, उन्हें धन देकर उनके लिए सुख विलास की सामग्री जुटाते और उन्हें ठाठ-बाट से जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाते हैं, वे उस कसाई से कम पाप के भागी नहीं हैं जो बकरे की गर्दन पर छुरी चलाता है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

पाप से पाप ही उत्पन्न होगा। अगर पाप से पुण्य होता तो आज संसार में कोई पापी न रह जाता।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

पापियों में भी आत्मा का प्रकाश रहता है और कष्ट पाकर जागृत हो जाता है। यह समझना कि जिसने एक बार पाप किया, वह फिर कभी पुण्य नहीं कर सकता, मानव-चरित्र के एक प्रधान तत्त्व का अपमान करना है।

—प्रेमचन्द (धिक्कार)

पाप के अथाह दलदल में जहाँ एक बार पड़े कि फिर प्रतिक्षण नीचे ही चले जाते हैं।

—प्रेमचन्द (ईश्वरीय न्याय)

पाप के पंजों में फँसा हुआ मन पतझड़ का पत्ता है, जो हवा के जरा से झोंके से गिर पड़ता है।

—प्रेमचन्द (ईश्वरीय न्याय)

पाप एक करुणाजनक वस्तु है, मानवीय विवशता का द्योतक है। उसे देखकर दया आती है। लेकिन पाप के साथ निर्लज्जता और मदान्धता एक पैशाचिक लीला है, दया और धर्म की सीमा से बाहर।

—प्रेमचन्द (प्रेमाश्रम)

गुमराहों पर दया करना पाप है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

पाप का स्वाद मदिरा से कहीं अधिक भयंकर होता है।

पाप अग्नि का वह कुण्ड है जो आदर और मान साहस और धैर्य को क्षण भर में जलाकर भस्म कर देता है।

—प्रेमचन्द (वरदान)

कृतघ्नता से बड़ा कोई पाप नहीं।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

अपने पाप सब को आप भोगने पड़ते हैं, भगवान का इसमें कोई दोष नहीं।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

किसी का दिल दुखाना सबसे बड़ा अधर्म है।

पाप का दण्ड अवश्य भोगना पड़ता है, चाहे जल्दी हो, चाहे देर।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

मां का दिल दुखाना महापाप है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

जब आत्मा, आत्मा को चाहने लगे, किसी प्रकार से भी वह न थम सके, तभी पाप क्या है स्पष्टतया समझ में आ जाता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (पाप)

असत्य भाषण पाप है और झूठी निन्दा करना और भी बड़ा पाप है। स्वजाति की निन्दा से बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा)

अमृत सेवक का वेतन नहीं है, वह तो देवता की अर्चना के भोग की सामग्री है। उसका अपात्र में उत्सर्ग कर देना ही पाप है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (विभाग)

पाप आज विश्व के सभी मनुष्यों में समा गया है और वही आज एक स्थान पर एकत्रित होकर भयानक पर्वत के रूप में हम सब पर टूटना चाहता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मा मा हिंसीः)

कोई एक प्रवृत्ति जब विशेष रूप से आश्रय पाकर स्वभाव के सामञ्जस्य को पीड़ा पहुँचाती है, तभी पाप की उत्पत्ति होती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्वभाव लाभ)

मुफ्तखोरों का सत्कार करना पाप है।

—प्रेमचन्द (खुचड़)

मनोभावों से ही पाप माना जाता है, वचन या कर्म से नहीं। पत्नी और पुत्री के आलिंगन में भाव की ही भिन्नता होती है।

—शरण (सोना माटी)

जो पापी विभिन्न प्रकार के दुष्कर्म करते हैं तथा जिनका धंधा ही हमारे मस्तक पर अपने पैरोंकी धूलि लगाना है, वे तो धरा पर केवल बोझ ही बढ़ाते रहेंगे।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा)

पापी में पाप यदि स्थिर होकर ही रहता तो उस स्थिरत्व के ऊपर रुद्र का असीम शासन दण्ड भयानक भार बनकर उसे एकदम विलुप्त कर देता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (वर्ष का अंत)

अनजाने में जो पाप हो जाता है, उसका तो एक प्रायश्चित भी होता है। देवता उसे क्षमा कर देते हैं, किन्तु जान-बूझकर जो पाप किया जाता है, उसके फल से कैसे बचा जा सकता है।

—शरण (सोना माटी)

पाप से अपराधों का ढेर लग गया है, पापों का स्तूप खड़ा हो गया है। पाप ही तो हमें मारेगा, और मारकर अपना परिचय देगा। क्या पाप को हम तभी पहचानेंगे जब मर मिटेंगे।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मा मा हिंसीः)

जिसे यथोचित काल में बाहर ही मरते देना ठीक है उसे भीतर से जाकर जीवित रखना ही अपने हाथ से पाप की सृष्टि करना है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (विभाग)

जो अनित्य है, विशेष सामयिक प्रयोजन में विशेप स्थान में जिसका प्रयोग होकर जो शांत हो जाता है, उसे ही अपने आन्तरिक नित्य निकेतन में बाँधकर रखना एवं प्रत्यह उसके लिए अनावश्यक खाद्य उपार्जन करने के लिए मारे-मारे फिरना ही पाप है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (विभाग)

मनुष्य नाना कारणवश अपने स्वभाव का संतुलन नहीं रख पाता, वह सामंजस्य खो बैठता है, यही उसके पाप की जड़ है।···धर्मनीति उसे इसलिए संयम में प्रवृत्त करती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्वभाव लाभ)

पाप वह जिसमें हम खिचते हैं और खिचना नहीं चाहते। जिसे आधा मन चाहता है, आधा एकदम नहीं चाहता, जो हमें स्वाद में अच्छा लगता है, परिणाम में बुरा लगता है। पाप इस तरह आदमी के अपने अन्दर के द्वन्द्व में बसता है।

—जैनेन्द्र (इतस्ततः)

पाप और भय का अभिन्न संग है।

—जैनेन्द्र (इतस्ततः)

भय में से पाप की उपज है।

—जैनेन्द्र (इतस्ततः)

यदि घड़ा पाप का खाली कुछ रह जाएगा,
तो छलकेगा, इसलिए उसे पूरा भर दो।
जो 'धूल' ग्राहकों की आँखों में झोंको तुम,
फिफ्टी परसैंट मिलावट उसमें भी कर दो।।

—काका हाथरसी (दुलत्ती)

बेचहिं वेद धरमु दुहि लेहीं । पिसुन पराय पाप कहि देहीं ।।
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। वेद विदूषक विस्व विरोधी ।।
पावों मैं तिन्ह कै गति धारा । जौ जननो यहु संमत मोरा ।।

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

पापी का उपकार करो, हाँ पापों का प्रतिकार करो।

—मैथिलीशरण गुप्त (अनघ)

पापी पाप न कीजिए, न्यारा रहिए आप।
करणी आपो आपरी, कुण वेटो कुण बाप ।।

—बांकीदास (ग्रंथावली भाग-३)

मनुष्य आत्मा यदि पापकारिणी,
प्रशान्ति पाती न कदापि स्वर्ग में,
वरं च होती भयभीत दंड से,
अशान्त होता दिन-रात चित्त है।

—अनूप (वर्द्धमान)

पहाड़ चाहे गिर पाप पैं पड़े,
निपात हो यद्यपि सप्त व्योम का,
परन्तु तो भी छिपते न हैं कभी
अवश्य होते सब व्याप्त दृष्टि में।

—अनूप (वर्द्धमान)

जहाँ मिथ्याभिमान है वहीं पाप है।

— महात्मा गांधी

पाप से घृणा करो, किन्तु पापी से नहीं।

—महात्मा गांधी

जिस कार्य में आत्मा का पतन हो वही पाप है।

—महात्मा गांधी

पाप करने का अर्थ यह नहीं कि जब वह आचरण में आ जाए तब ही उसकी गिनती पाप में हुई। पाप तो जब हमारी दृष्टि में आ गया, विचार में आ गया वह हमसे हो गया।

—महात्मा गांधी

शरीर को रोगी और दुर्बल रखने के समान दूसरा कोई पाप नहीं है।

—लोकमान्य तिलक

कोई भी कर्म अपने आप पाप या पुण्य नहीं हो सकता, ठीक जिस प्रकार विन्दु या शून्य का स्वत: कोई मूल्य नहीं होता।

—स्वामी रामतीर्थ

जहाँ किसी प्रलोभन से प्रेरित होकर तुम कोई पाप करने को उतारू हो, वहीं ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करो।

—स्वामी रामतीर्थ

जैसे पुण्य का हृदय से ही सम्वन्ध है उसी प्रकार पाप का भी हृदय से ही सम्वन्ध है। पाप और पुण्य दोनों तुम्हारी मानसिक अवस्था से सम्वन्वित हैं।

—स्वामी रामतीर्थ

प्राणघात, चोरी और व्यभिचार ये तीन शारीरिक पाप हैं। झूठ वोलना, निन्दा करना, कटुवचन तथा व्यर्थ भाषण ये चार वाणी के पाप हैं। पर धन की इच्छा, दूसरे की बुराई की इच्छा, असत्य, हिंसा, दयादान में अश्रद्धा—ये मानसिक पाप हैं।

—महात्मा बुद्ध

जो पापियों से जान-वूझकर कड़े शब्द कहता है वह मानो उनके पाप रूपी घाव पर नमक छिड़कता है।

—महात्मा बुद्ध

संसार में प्राणी स्वतन्त्र ओर स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने के लिए आए हैं, उनको स्वार्थ के लिए कष्ट पहुँचाना महान पाप है।

—लोकमान्य तिलक

पापी को पुण्यात्मा वनाने का यह भी एक उपाय है कि वार-बार उसके पुण्य की प्रशंसा की जाए। अपने सम्वन्ध में ऊँची-ऊँची वातें सुनकर मनुष्य सदैव ऊपर ही उठने की कोशिश करता है।

—जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'

असफलता नहीं अपितु निकृष्ट ध्येय ही पाप है।

—टेनीसन

यदि मुझे विश्वास होता कि प्रभु मुझे क्षमा कर देगा और मानव जाति मेरे पाप को न जान सकेगी, तथापि पाप की अनिवार्य तुच्छता के कारण मुझे उसके करने में शर्म आयेगी।

—प्लेटो

जिस तरह आग आग का शमन नहीं कर सकती उसी तरह पाप पाप का शमन नहीं कर सकता।

—टालस्टाय

मनुष्यों के सारे पापों को मैं उनकी प्रकृति की अपेक्षा उनका रोग समझता हूँ।

—रस्किन

निर्धनता और धन दोनों तुलनात्मक पाप हैं।

—विक्टर ह्यूगो

पाप की स्वीकृति मुक्ति का श्रीगणेश है।

—ल्यूथर

पाप में पड़ना मानव प्रकृति है, उसमें डूबे रहना शैतान प्रकृति है, उस पर दुःखित होना संत प्रकृति है और सब पापों से मुक्त होना ईश प्रकृति है।

—लांगफेलो

जब हम मृत्यु का स्मरण करते है तो सहस्रों पाप, जिन्हें हमने कीड़े-मकोड़ों के समान पगों के नीचे कुचल डाला है, हमारे विरुद्ध विषधर के समान खड़े होते हैं।

—वाल्टर स्काट

पाप का पारिश्रमिक मृत्यु है।

—बाइबिल

पाप में पड़नें वाला मानव होता है, जो पाप पर पछताता है वह सज्जन है, जो पाप पर गर्व करता है वह शैतान है।

—फूलर

पाप की कल्पना आरम्भ में अफीम के फूल की तरह सुन्दर और मनोहारिणी होती है; किन्तु अन्त में नागिन के आलिंगन की तरह विनाशमयी है।

—हरिभाऊ उपाध्याय

युद्ध में जाकर लड़ना कोई बहुत बड़ा पाप नहीं है। वास्तव में पाप हैं हमारे समाज की वे बातें जिनके कारण युद्ध होते हैं।

—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

पावोगहाहि आरम्भा, दुक्खफासा य अंतसो।
(पापानुष्ठान अन्ततः दुःख ही देते हैं।)

—महावीर स्वामी (सूत्रकृतांग)

पाप-पुण्य

इह लोगे सुचिन्ना कम्मा इह लोगे सुहफल विवाग संजुत्ता भवति।
इह लोगे सुचिन्ना कम्मा पर लोगे सुहफलविवाग संजुत्ता भवति॥
(इस जीवन में किए हुए सत् कर्म इस जीवन में सुखदायी होते हैं। इस जीवन में किए हुए सत्कर्म अगले जीवन में भी सुखदायी होते हैं।)

—महावीर स्वामी (स्थानांग)

सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं।
(मानव के सभी सत्कर्म सफल होते हैं।)

—महावीर स्वामी (उत्तराध्ययन)

जह वा विसगंडूसं, कोई घेतूण नाम तुण्हिक्को।
अण्णेण अदीसंतो, कि नाम ततो न व मरेज्जा॥

(जिस प्रकार कोई चुपचाप लुक-छिपकर जहर पी लेता है, तो क्या वह उस जहर से नहीं मरेगा? अवश्य मरेगा। उसी तरह जो छिपकर पाप करता है, तो क्या वह उससे दूषित नहीं होगा? अवश्य होगा।)

—आचार्य भद्रबाहु (सूत्रकृतांग निर्युक्ति)

रागो जस्स पसत्थो, अणुकंपासंसिदो य परिणामो।
चित्तम्हि णत्थि कलुसं, पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥

(जिसका राग प्रशस्त है, हृदय में अनुकम्पा की वृत्ति है और मन में कलुष भाव नहीं है, उस जीव को पुण्य आगमन होता है।)

—आचार्य कुन्दकुन्द (पंचास्तिकाय)

कम्म मसुहं कुसीलं,
सुहकम्मं चाविजाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं,
जं संसारं पवेसेदि ॥

(अशुभ कर्म बुरा और शुभ कर्म अच्छा है, यह साधारण लोग मानते हैं। किन्तु वस्तुतः जो कर्म प्राणी को जगत् में परिभ्रमण कराता है, वह अच्छा कैसे हो सकता है?)

—आचार्य कुन्दकुन्द (समयसार)

चरिया पमाद वहुला, कालुस्सं लोलदा य विसयेसु।
पर परितावपवादो, पावस्स य आसवं कुणादि ॥

(प्रमाद युक्तचर्या, मन की कलुषता, विषयों के प्रति लोलुपता, पर-पीड़ा और परनिन्दा—इनसे पाप का आगमन होता है।)

—आचार्य कुन्दकुन्द (पंचास्तिकाय)

जस्स ण विज्जदि रागो, दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु।
णासवादि सुहं असुहं, समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥

(जिस साधक का किसी भी द्रव्य के प्रति राग, द्वेष और मोह नहीं है, जो दुख-सुख में समभाव रखने वाला है, उसे न पुण्य का आगमन होता है और न पाप का।)

—आचार्य कुन्दकुन्द (पंचास्तिकाय)

पावाणं जदकरणं, तदेव खलु मंगलं परमं।

(पाप कर्म न करना ही वस्तुतः परम मंगल है।)

—वृहत्कल्प भाष्य

सुहपरिणामो पुण्णं, असुहो पावं ति हवदि जीवस्स।

(आत्मा का शुभ भाव पुण्य है और अशुभ भाव (परिणाम) पाप है।)

—आचार्य कुन्दकुन्द (पंचास्तिकाय)

पुत्रेषु वा नप्तृषु वा न चेदात्मनि पश्यति।
फलत्येव ध्रुवं पापं गुरु भुक्तमिवोदरे॥

(जिस प्रकार गरिष्ठ आहार उदर में जाकर अवश्य दुःख देता है, उसी प्रकार पाप अपने लिए अनिष्टकर न प्रतीत होने पर भी बेटे-पोतों तक पहुँचकर अपना प्रभाव दिखाता है।)

—वेदव्यास (महाभारत)

पासयति पातयति वा पापं।

(जो आत्मा को बाँधता है या गिराता है, वह पाप है।)

—उत्तराध्यरन चूर्णि

पुन्नं मोक्खगमणविग्घाय हवति।

(परमार्थ दृष्टि से पुण्य भी मोक्ष-प्राप्ति में बाधक है।)

—निशीथ चूर्णि

सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति।
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्ण फला भवंति॥

(अच्छे कर्म का अच्छा फल होता है। बुरे कर्म का बुरा फल होता है।)

—औपपातिक सूत्र

न हु पावं हवइ हियं, विसं जहा जीवियत्थिस्स।

(जैसे कि जीवितों के लिए विष हितकर नहीं होता, वैसे ही कल्याणार्थी के लिए पाप हितकर नहीं है।)

—मरण समाधि

संसार संतई मूलं, पुण्णं पावं पुरेकडं।

(पूर्व कृत पुण्य और पाप ही विश्व परम्परा का मूल है।)

—इसि भासियाइं

यं करोति तेन उपपज्जति ।

(प्राणी जो कर्म करता है, वह दूसरे जन्म में उसके साथ रहता है ।)

—महात्मा बुद्ध (मज्झिमनिकाय)

चोरो यथा संधिमुखे गहीतो,
सकम्मुना हञ्ञति पापधम्मो ।
एवं पजा पेच्च परम्हि लोके,
सकम्मुना हञ्ञति पापधम्मो ।

(सेंध के द्वार पर पकड़ा गया गया पापी चोर जैसे अपने ही कर्म से मारा जाता है, इसी प्रकार पापी मनुष्य मरकर परलोक में अपने ही कर्म से पीड़ित होता हैं ।)

—महात्मा बुद्ध (मज्झिमनिकाय)

यो पुब्बेव पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति ।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तो व चन्दिमा ।।

(जो पूर्व के अर्जित पाप को बाद में साफ कर देता है, वह बादल से मुक्त चन्द्र की भाँति इस जगत् को प्रकाशित करता है ।)

—महात्मा बुद्ध (मज्झिमनिकाय)

पुञ्ञानि परलोकस्मि, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं ।

(परलोक में सिर्फ़ पुण्य ही प्राणियों का सहारा होता है ।)

—महात्मा बुद्ध (संयुत्तनिकाय)

अत्तानं चे पियं जञ्ञा, न नं पापेन संयुजे ।

(जिसको अपनी आत्मा प्रिय है, वह स्वयं को पाप में न लगाए ।)

—महात्मा बुद्ध (संयुत्तनिकाय)

उभो पुञ्ञं च पापं च, यं मच्चो कुरुते इघ ।
तं हि तस्स सकं होति, तं व अदाय गच्छति ।।

(मानव यहाँ जो भी पाप-पुण्य करता है वही उसका अपना होता है । उसे ही लेकर परलोक में जाता है ।)

—महात्मा बुद्ध (संयुत्तनिकाय)

भुंगते ते त्वघं पापा ये पेचन्त्या त्मकारणात् ।

(जो अपने लिए ही भोजन पकाते हैं वे पापी हैं, वे पाप खाते हैं।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

यादिसं वपते बीजं, तादिसं हरतेफलं ।

(जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल पाता है।)

—महात्मा बुद्ध (संयुत्तनिकाय)

पापकारी उभयत्थ सोचति ।

(पाप करने वाला लोक-परलोक दोनों जगह शोक करता है।)

—महात्मा बुद्ध (धम्मपद)

कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति ।

(जिसने पुण्य कर लिया है, वह दोनों लोकों में सुखी है।)

—महात्मा बुद्ध (धम्मपद)

सचे भायथ दुक्खस्स, सचे वो दुक्खमप्पियं ।
माकत्थ पापकं कम्मं, आवि वायदि वा रहो ॥

(यदि सचमुच ही तुम दुःख से भयभीत हो और तुम्हें दुःख अप्रिय है, तो फिर किसी भी गुप्त रूप में पाप कर्म मत करो।)

—महात्मा बुद्ध (उदान)

सचे च पावकं कम्मं. करिस्सथ करोध वा ।
न वो दुक्खा पमुत्यत्थि, उपेच्च पि पलायतं ॥

(यदि तुम पाप कर्म करते हो अथवा करना चाहते हो तो दुःख से मुक्त नहीं हो सकोगे, चाहे भागकर कहीं भी चले जाओ।)

—महात्मा बुद्ध (उदान)

अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः ।
भर्तः पर्यागते काले कर्त्ता नास्त्यत्र संशयः ॥

(इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि समय आने पर कर्त्ता को उसके पाप का फल अवश्य मिलता है।)

—वाल्मीकि

न हि पापं कतं कम्मं, सज्जु खीरं व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति, भस्माच्चन्नो व पावको ।।

(पाप कर्म स्वच्छ दूध के समान तत्काल ही विकार नहीं लाता, वह तो राख से ढकी अग्नि के समान शनैः-शनैः जलते हुए मूर्ख आदमी का पीछा करता रहता है।)

—महात्मा बुद्ध (धम्मपद)

छन्नमति वस्सति, विवटं नाति वस्सति।
तस्मा छन्नं विवरेथ, एवं तं नातिवस्सति ।।

(छिपा हुआ (पाप) लगा रहता है, खुलने पर नहीं लगा रहता। अतः गुप्त (छिपे) पाप को खोल दो, आत्मालोचन के रूप में प्रकट कर दो, फिर वह नहीं लगा रहेगा।)

— महात्मा बुद्ध (उदान)

सुकरं साधुना साधु, साधु पापेन दुक्करं।
पापं पापेन सुकरं, पापमरियेहि दुक्करं ।।

(साधु पुरुषों को सत्कर्म करना सुकर है, पापियों को साधु कर्म करना दुष्कर है। पापियों को पाप कर्म करना सुकर है, आर्य लोगों को पाप कर्म करना दुष्कर है।)

—महात्मा बुद्ध (उदान)

यो निन्दियं पसंसति,
तं वा निन्दति यो पसंसियो।
विचिनाति मुखेन सो कलि,
कलिना तेन सुखं न विन्दति ।।

(जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है और प्रशंसनीय की निन्दा करता है, वह मुख से पाप इकट्ठा करता है, जिसके कारण उसे कभी सुख की प्राप्ति नहीं होती है।)

—महात्मा बुद्ध (सुत्तनिपात)

कम्मना वत्तती लोको, कम्मना वत्तती पजा।
(विश्व कर्म से चलता है, प्रजा कर्म से चलती है।)

—महात्मा बुद्ध (सुत्तनिपात)

अरियो न रमती पापे, पापे न रमती सुची।
(आर्य लोग पाप में नहीं रमते, शुद्ध जन पाप में नहीं रमते।)

—महात्मा बुद्ध (उदान)

यहिं यहिं गच्छति पुञ्ञकम्मो,
तहिं तहिं मोदति काम कामी।

(पुण्यात्मा जहाँ कहीं भी जाता है, सब जगह सफलता एवं सुख पाता है।)

—महात्मा बुद्ध (विमानवत्थु)

सुखं अकतपुञ्ञानं, इध नत्थि परत्थ च।
सुखं च कतपुञ्ञानं, इध चेव परत्थ च॥

(पुण्य नहीं करने वालों के लिए न यहाँ सुख है, न वहाँ। पुण्य करने वालों के लिए लोक-परलोक दोनों जगह सुख है।)

—महात्मा बुद्ध (पेतवत्थु)

अत्तना व कतं पापं, अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं, अत्तना वं विसुज्भति॥

(अपने द्वारा किया गया पाप स्वयं को ही मलिन करता है। अपने द्वारा न किया गया पाप स्वयं को विशुद्ध रखता है।)

—महात्मा बुद्ध (महानिद्देसपालि)

यधाकारी यथाचारी तथा भवति, साधुकारी;
साधुर्भवति, पापकारी पापो भवति।

(जो जैसा कर्म करता है, जैसा आचरण करता है, वह वैसा ही हो जाता है—साधु कर्म करने वाला साधु होता है और पाप कर्म करने वाला पापी।)

—बृहदारण्यक उपनिषद्

क्रतुमयः पुरुषो, तथाक्रतु रस्मिंल्लोके;
पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति।

(पुरुष क्रतुमय है, कर्ममय है। यहां इस लोक में जैसा भी कर्म किया जाता है, वैसा ही कर्म यहाँ से चलकर आगे परलोक में होता है।)

—छान्दोग्य उपनिषद्

य इह रमणीय चरणा अभ्यासो हयत्ते रमणीयां योनिमापद्येरम्।
य इह कपूयचरणा अभ्यासो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्॥

(अच्छे आचरण वाले अच्छी योनि में जाते हैं। और बुरे आचरण वाले बुरी योनि में जाते हैं।)

—छान्दोग्य उपनिषद्

काममय एवायं पुरुष इति, स यथा कामो भवति तत्क्रतु भवति,
यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते, यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते।

(यह पुरुष काममय है, संकल्प रूप है। जैसा संकल्प होता है, वैसा ही प्रयत्न होता है, जैसा प्रयत्न होता है वैसा ही कर्म होता है और जैसा कर्म होता है वैसा ही उसका फल होता है।)

—बृहदारण्यक उपनिषद्

शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापंश्नुते।

(सत्कर्म करने वाला शुभफल पाता है और पापकर्म करने वाला अशुभ फल पाता है।)

—वाल्मीकि

द्वौ हुडाविव युध्येते पुरुषार्थौ परस्परम्।
य एव बलवांस्तत्र स एव जयति क्षणात्॥

(पूर्व जन्म के और इस जन्म के कर्म दो मेढ़ों की तरह आपस में संघर्ष करते हैं, उनमें जो शक्तिशाली होता है, वही दूसरे को पल भर में पछाड़ देता है।)

—योगवाशिष्ठ (मुमुक्षुप्रकरण)

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति, पापः पापेन।

(पुण्य कर्म से जीव पवित्र होता है और पाप कर्म से पापात्मा होता है।)

—बृहदारण्यक उपनिषद्

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता,
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाऽभिमान,
स्वकर्म सूत्रग्रथितो हि लोकः॥

(सुख और दुःख का दाता कोई और नहीं है। कोई दूसरा सुख-दुःख देता है—यह समझना कुबुद्धि है। 'मैं ही करता हूँ'—यह मध्यमानव का वृथा अभिमान है; क्योंकि विश्व के सभी प्राणी स्व-स्व कर्मों की डोरी में बँधे हुए हैं।)

—अध्यात्म रामायण

कायेन कुरुते पापं मनसा संप्रधार्यतत्।
अनृतं जिह्वया चाहत्रिविधं कर्म पातकम्॥

(असत्य रूप पाप को मानव पहले मन में विचारता है, फिर उसे देह द्वारा करता है, तब जिह्वा से कहता है। अतः मानसिक, वाचिक और कायिक—तीन प्रकार के पातक होते हैं।)

—वाल्मीकि

पात्र

पात्र जितना ही गम्भीर रूप में शून्य होता है, सुधा रस से भर कर उतना ही अधिक पूर्ण होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (प्रेम का अधिकार)

पार्थक्य

प्रकृति में नियम की सीमा ही पार्थक्य है और आत्मा में अहंकार की सीमा ही पार्थक्य है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (पार्थक्य)

पारखी

ज्ञान रतन की कोठरी, चुप कर दीन्हों ताल।
पारखि आगे खोलिए, कुंजी वचन रसाल॥

—महात्मा कबीर

हंसा बगुला एक सा, मानसरोवर माहि।
वगा ढंढोरे माछरी, हंसा मोती खाहि॥

—महात्मा कबीर

पारस

पारस के स्पर्श से जो क्षुद्र था उसमें एक क्षण में गौरव संचार हो जायेगा, जो मलिन था वह उज्ज्वल हो उठेगा, जिसका कोई दाम तथा मूल्य बढ़ जायेगा।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (पारस रतन)

पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो सकता।

—प्रेमचन्द (मंदिर)

पाषाण

पाषाण के भीतर भी कितने मधुर स्रोत बहते रहते हैं, उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है।

—जयशंकर प्रसाद

पिता

हर परिवार के पिता को अपने मितव्ययी पड़ोसी का अनुकरण करना चाहिए और उन पुरुषों के जीवन से लाभ उठाना चाहिए जो अपनी आय उत्तम रीति से व्यय करते हैं।

—सुकरात

न सत्यं दानमानी वा न यज्ञाश्चाप्तदक्षिणाः।
तथा बलकराः सीते! यथा सेवा पितुर्हिताः॥

(हे सीते! पिता की सेवा करना जिस तरह कल्याणकारी माना गया है, वैसा प्रबल साधन न सत्य है, न दान-सम्मान है और न अधिक दक्षिणा वाले यज्ञ ही हैं।)

—बाल्मीकि रामायण

पिता प्रकृति का दिया हुआ महाजन है।

—फ्रेंच कहावत

न ह्यतो धर्म चरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रुषा तस्य वा वचन क्रिया॥

(पिता की सेवा अथवा उनकी आज्ञा का पालन जैसा धर्म दूसरा कोई भी नहीं है।)

—बाल्मीकि रामायण

पिपासा

पिपासा तृप्त होने की चीज नहीं। आग को पानी की आवश्यकता नहीं होती, उसे घृत की आवश्यकता होती है जिससे वह और भड़के।

—भगवतीचरण वर्मा

पीड़ा-पीड़ित

जिस परिमाण में हम में ज्ञान, प्रेम व कर्म का मिलन होता है, उसी परिमाण में हमारे अन्दर की पूर्णता है। इसमें विच्छेद उत्पन्न होते ही पीड़ा का जन्म होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (शक्ति)

पीड़ित प्राणियों के लिए रात एक कठिन तपस्या है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

पीड़ित हृदय कभी निश्शंक नहीं होता।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

इस मीठी-सी पीड़ा में, डूबा जीवन का प्याला।
लिपटी-सी उतराती है, केवल आँसू की माला॥

—महादेवी वर्मा

पीड़ा से दृष्टि मिलती है, अतः आत्मपीड़न ही आत्मदर्शन का माध्यम है।

—अज्ञात

पीड़ा पाप का परिणाम है।

—महात्मा बुद्ध

मानसिक पीड़ा शारीरिक पीड़ा की अपेक्षा अधिक कष्टदायक होती है।

—साइरस

जब देह के किसी भाग में पीड़ा होती है तो सारी देह बेचैन हो उठती है।

—सादी

पीतल

पीतल सोने का गौरव प्राप्त नहीं कर सकता।

—शरण (सोना माटी)

पुण्य

यदि किसी पुण्य को मन में यह रखकर आचरण करें कि भविष्य में किसी फल-लाभ के लिए हम जमा कर रहे हैं, तो यह संचय ही हमें दबा बैठेगा। उसके सम्बन्ध में हम कृपण जैसे हो जाते हैं, उसके सम्बन्ध में हमारी स्वाभाविकता एकदम नष्ट हो जाती है, सब बातों में हम सूद की ओर ही ताकते तथा लाभ का ही हिसाब करते रहते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (संचय तृष्णा)

पुण्य सोई कृत नीनिसंग, संग अनीति सोई पाप ।
यथा स्वीकीया पर किया, तजे भजे अघताप ।।

—बलदेवदास गुप्त (सं० नीति नवनति)

मेरी भूमि तो है पुण्य भूमि वह भारती,
सौ नक्षत्र-लोक करें आके आप आरती।

—मैथिलीशरण गुप्त (नहुष)

तहँ पुष्कर, तहँ सुरसरी, तहँ तीरथ, तप, याग ।
उठ्यौ सुवीर-कवंध जहँ, तहँई पुण्य-प्रयाग ।।

—वियोगी हरि (वीर सतसई)

जैसे धन का नाश होने पर सगे-सम्बन्धी छोड़ देते हैं वैसे ही पुण्य क्षीण हो जाने पर देव भी मानव को स्वर्ग से गिरा देते हैं।

—महाभारत

किसी मानव के निन्दा करने पर भी जो उसकी निन्दा नहीं करता और उसकी निन्दा को सह लेता है, वह पुरुष निन्दा करने वाले पुरुष को भस्म कर डालता है और उसके पुण्य को अपने आप ग्रहण कर लेता है।

—महाभारत

पुत्र

लालयेत् पंच वर्पाणि दश वर्पाणि ताड़येत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं, मित्रवदाचरेत् ।।

(पाँच वर्प की अवस्था तक पुत्र का लालन-पालन करे, और उसके वाद दस वर्ष अर्थात् १५ वर्ष की अवस्था तक ताड़न करते हुए शिक्षा दे; किन्तु जव वह १६ वर्ष की अवस्था में पहुँचे तव से मित्र के समान उसके साथ व्यवहार करे।)

—चाणक्य

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यःपाति सर्वतः ।।

(क्योंकि वेटा 'पुम्' नामक नरक से पिता का उद्धार करता है, अतः 'पुत्र' कहा गया है। वास्तव में जो पितरों का सव ओर से परित्राण करता है, वही पुत्र है।)

—वाल्मीकि (रामायण)

पुत्र का मोह प्रकृति का सवसे वड़ा आकर्पण है।

—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र

पुत्र के प्रति पिता का कर्त्तव्य यही है कि वह उसे सभा में पहली पंक्ति में वैठने योग्य वना दे।

—तिरुवल्लुवर

किम् तया क्रियते धेन्वा,
या न दोग्ध्री न गर्भिणी ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन,
यो न विद्वान् न धार्मिकः ।।

(उस गाय से क्या लाभ है जो न दूध देती हो न गर्भ धारण करती हो, उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ जो न विद्वान् ही हुआ न धार्मिक।)

—पंचतंत्र

पुत्रवती

पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भक्त जासु सुत होई॥

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

पुनर्जन्म

धारत वसन नवीन जिमि, जर्जर मनुज उतारि।
तजि तिमि आत्महु जीर्ण तनु, लेत अन्य नवधारि॥

— द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

आत्मा एक चेतन तत्त्व है, जो अपने रहने के लिए उपयुक्त देह का आश्रय लेता है और एक देह से दूसरी देह में जाता रहता है। भौतिक देह आत्मा को धारण करने के लिए विवश होता है।

—गेटे

व्याधि जरा मृत्यु है तो जन्म भी तो है नया।
आया फिर नूतन हो जीर्ण हो के जो गया॥

—मैथिलीशरण गुप्त (नहुष)

जन्म और मृत्यु विश्व के दो निर्विवाद सत्य हैं। पुनर्जन्म की समस्या इन्हीं दो सत्यों का स्पर्श करती है।

—अज्ञात

पुनर्मिलन

विच्छेद के बाद पुनर्मिलन में कुछ देर के लिए एक नई लज्जा भी घेरती है, जिस जगह परस्पर एक दूसरे से पृथक होते हैं, ठीक उस स्थान पर मिलने से पूर्व प्रेमी-प्रेमिका परस्पर एक दूसरे से नए प्रेमालाप की प्रत्याशा करते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आँख की किरकिरी)

पुरस्कार

जो मानव दूसरे की भलाई चाहता है, उसने अपना भला पहले ही कर लिया।

—कन्फ्यूशियस

पुराना

पुराना होना ही सच्चाई का कोई प्रमाण नहीं है।

—स्वामी रामतीर्थ

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्।

(कोई वस्तु सिर्फ इस कारण ग्राह्य और उत्तम नहीं है कि वह पुरातन है।)

—कालिदास

पुरानी बात भी आत्मबल के साथ कही जाती है, तो नई हो जाती है।

—प्रेमचन्द (गोदान)

पुरुष (दे० मनुष्य)

पुरुष के मन का भाव, उसका अन्याय और अविचार सभी जगह समान है। नारी को उसके न्याय संगत अधिकार से न्यूनाधिक प्रायः सभी राष्ट्रों के पुरुषों ने वंचित कर रखा है। मैं जानता हूँ इस वंचिता नारी का दान न मिलने पर इस संसार व्यापी नरमेध के प्रायश्चित का परिणाम आज क्या होता!

—शरच्चन्द्र (स्वराज्य की साधना में नारी)

स्वाभिमानी और पवित्र हृदय पुरुष निर्धन पर होने पर भी श्रेष्ठ गिना जाता है।

—लोकमान्य तिलक

जो वीरता से भरा हुआ है, जिसका नाम लोग बड़े गौरव से लेते हैं, शत्रु भी जिसके गुणों की प्रशंसा करते हैं, वही पुरुष वास्तव में पुरुष है।

—गणेशशंकर विद्यार्थी

पुरुष है—कूतूहल और प्रश्न; और स्त्री है विश्लेषण, उत्तर और सब बातों का समाधान।

—जयशंकर प्रसाद

पुरुष जो स्वयं ही कायर और भीरु होते हैं, जो अन्यान्य देशों के पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की ही तरह निरुपाय होते हैं, जो स्त्रियों के सामने पुरुषों के रूप में अपना परिचय देने की यथार्थ क्षमता से वंचित हैं, वे कायरों की भांति अपनी अपेक्षा अधिक दुर्बल और निरुपाय का ही उत्पीड़न करके अपने कर्त्तव्य के पालन का आनन्द प्राप्त करना चाहेंगे।

—शरच्चन्द्र (नारी का मूल्य)

खम ठोंक खेलता है जब नर, पर्वत के जाते पाँव उखड़।
मानव जब जोर लगाता है, पत्थर पानी बन जाता है।।

—दिनकर की सूक्तियाँ

नारी से पुरुष अधिक कार्यकुशल होता है परन्तु स्मरण शक्ति में व सामाजिक कला में स्त्री पुरुष के आगे रहती है।

—अज्ञात

उद्यानं ते पुरुष नावयानं।
(पुरुष ! तेरे लिए ऊपर उठना है, न कि नीचे गिरना।)

—अथर्ववेद

पुरुषार्थ

ईश्वर रूप हुए विना मनुष्य का समाधान नहीं होता, उसे शान्ति नहीं मिलती। ईश्वर रूप होने का प्रयत्न ही सच्चा और एकमात्र पुरुषार्थ है।

—महात्मा गांधी

लक्ष्य पूरा करने के लिए अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परिश्रम करना ही पुरुषार्थ है।

—महर्षि पतंजलि

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ बतलाये गये हैं, इनमें से मोक्ष और काम दो परस्पर विरोधी सिरों पर स्थित हैं।

—विनोबा भावे

आत्मा को मोक्ष-पुरुषार्थ की अभिलाषा होती है, शरीर को काम-पुरुषार्थ प्रिय है। दोनों एक दूसरे का नाश करने की ताक में हैं।

—विनोबा भावे

कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीनों का जिस जगह ऐक्य होता है वही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है।

—अरविन्द घोष

वीर भोग्या धरा है, हैं यह कथन यथार्थ।
प्रवल पराक्रम किए है, मिलता कलित पदार्थ॥

—अयोध्यासिंह (हरिऔध सतसई)

सब के हृदय में शूल है,
सबके पगों में धूल है।
रूकना यहाँ पर भूल है,
पथ पर कहीं विश्राम-हित।
सोना यहाँ अच्छा नहीं,
ससार है, संसार है।

—शिवमंगलसिंह सुमन (प्रलय-सृजन)

सच मुच जैसा मूल्य वैसा ही पदार्थ ।
हाँ, हाँ, पुरुषार्थ, पुरुषार्थ, पुरुषार्थ है ।।

—मैथिलीशरण गुप्त (नहुष)

ओ मनुष्य ! तू बैठ न थक कर, पथ के साथ-साथ आगे बढ़ ।
रुक देखकर चट्टानों को, सागर में घुस, पर्वत पर चढ़ ।।

—रघुवीरशरण मित्र (जननायक)

तू क्यों बैठ गया है पथ पर ?
ध्येय न हो, पर है मग आगे;
बस धरता चल तू पग आगे,
बैठ न चलने वालों के दल में तू आज तमाशा बनकर ।
तू क्यों बैठ गया है पथ पर ?

—बच्चन (अभिनव सोपान)

नित्य गतिमय इस जगत में, हृदय की शांति कैसी ?
बैठने की चाह कैसी ? यह अलस विश्रान्ति कैसी ?
मानवों के पूत, बोलो, श्रान्ति की यह भ्रांति कैसी ?
यहाँ कहाँ विश्राम ? जग का नियम है चंक्रमण,
क्षण-क्षण यदपि हो अति थकित तन-मन ।

—बालकृष्ण शर्मा नवीन (हम विषपायी जन्म के)

इस संसार समर-प्रांगण में जीवन है क्या ? इक संग्राम,
रंग-मंच पर नायक बनकर दिखलावें हम अपना काम ।
हम मनुष्य हैं क्यों निराश हो बैठे, धरे हाथ पर हाथ,
यहाँ नहीं तो और देश में परखें भाग्य धैर्य के साथ ।।

—गुरु भक्तसिंह (नूरजहाँ)

काल कार्य, साधन मनुज, पुरुषार्थ ही बलवान ।
पुरुषोत्तम संतत करत, युगनवीन निर्माण ।।

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

उद्योगे नास्ति दारिद्रयं जपतो नास्ति पातकम् ।
मौने च कलहो नास्ति नास्ति जागरितो भयम् ।।

(पुरुषार्थं करने पर निर्धनता नहीं रहती। जपने वाले को पाप नहीं लगता, मौन होने से कलह नहीं होता और जागने वाले के पास भय नहीं आता ।)

—चाणक्य

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूया समश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ।।

(दाहिने हाथ में मैं स्व पुरुषार्थं लिए हूँ, बायें में सफलता । अपने परिश्रम से गोधन अश्वधन, स्वर्णादि का विजेता प्रभु कृपा से मैं स्वयं ही होऊँ ।)

—अथर्ववेद

अभिमानवतो मनस्विनः प्रियमुच्चैः पदमारूरक्षतः ।
विनिपात निवर्त्तन क्षमं मतमालम्बनमात्म पौरुषम् ।।

(प्रगति के पद पर आरोहण करने के इच्छुक, मानशाली धीर पुरुष आपत्ति निवारण करने में समर्थं स्व पुरुषार्थं का आश्रय लेना उचित मानते हैं । वीरों का पुरुषार्थं ही सच्चा सहायक है ।)

—भारवि (किरातार्जुनीय)

कृतः पुरुषकारस्तु दैवमेवानुवर्तते ।
न दैवम कृते किंचित् कस्यचिद् दातुमर्हति ।।

(किया हुआ पुरुषार्थं ही दैव का अनुसरण करता है, किन्तु पुरुषार्थं न करने पर दैव किसी को कुछ नहीं दे सकता ।)

—महाभारत

विरियारम्भो, भिक्खवे, महत्तो अत्थाय संवत्तति ।

(भिक्षुओ ! उद्योगशीलता महान् अर्थ की सिद्ध के लिए होती है ।)

—महात्मा बुद्ध (अंगुत्तर निकाय)

कोसज्जं, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तति।

(भिक्षुओ ! आलस्य बड़े भारी अनर्थ के लिए होता है।)

—महात्मा बुद्ध (अंगुत्तर निकाय)

यो च वस्ससतं जीवे, कुसीतो हीन वीरियो।
एकाहं जीवितं सेय्यो, वीरिय मारभतो दल्हं ॥

(आलसी और उद्योगहीन रहकर सौ वर्ष जीवित रहने की अपेक्षा दृढ़ उद्योगी का एक दिन का जीवित रहना श्रेष्ठ है।)

—महात्मा बुद्ध (धम्मपद)

विरियेन दुक्खं अच्चेति, पञ्ञाय परिसुज्झति।

(मानव पराक्रम के द्वारा दुःखों से पार होता है और प्रज्ञा द्वारा परिशुद्ध।)

—महात्मा बुद्ध (सुत्तनिपात)

पतिरूपकारी धुरवा, उट्ठाता विन्दते धनं।

(कार्य के अनुरूप प्रयास करने वाला धीर मानव खूब लक्ष्मी (धन) प्राप्त करता है।

—महात्मा बुद्ध (सुत्तनिपात)

नहि रुण्णेन सोकेन, संति पप्पोति चेतसी।

(रुदन से अथवा शोक से मन को शांति नहीं मिलती।)

—महात्मा बुद्ध (सुत्तनिपात)

क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीचमुदाहृतम्।
क्षेत्रबीजसमायोगात् ततः सस्यं समृद्धयते ॥

(पुरुषार्थ खेत है और दैव को बीज बताया गया है। खेत और बीज के संयोग से ही अन्न उत्पन्न होता है।)

—महाभारत

अत्थं गतस्स न पमाणमत्थि।

(जो जीते जी अस्त हो गया है, उसका कोई प्रणाम नहीं रहता।)

—महात्मा बुद्ध (सुत्तनिपात)

संगामे में मतं सेय्यो, यञ्चे जीवे पराजितो।

(हार कर जीवित रहने की अपेक्षा युद्ध में प्राप्त वीर मृत्यु ही अधिक श्रेष्ठ है।)

—महात्मा बुद्ध (थेरगाथा)

अमोघं दिवसं कयिरा, अप्पेन बहुकेन वा।

(थोडा अथवा अधिक कुछ न कुछ सत्कर्म करके दिन को सफल बनाओ।)

—महात्मा बुद्ध (थेरगाथा)

उट्ठाहतो अप्पमज्जतो, अनुतिट्ठन्ति देवता।

(उद्योगी और अप्रमादी मनुष्य के अनुष्ठान में देवगण भी सहयोगी होते हैं।)

—महात्मा बुद्ध (जातक)

नालसो विन्दते सुखं।

(आलसी को सुख की प्राप्ति नहीं होती है।)

—महात्मा बुद्ध (जातक)

हित्वा हि सम्मा वायामं, विसेसं नाम मानवो।
अधिगच्छे परित्तम्पि, ठानमेत्तं न विज्जति॥

(यथोचित् सम्यक् प्रयास के विना मानव थोड़ी सी भी प्रगति कर ले यह कहना भी सम्भव नहीं है।)

—महात्मा बुद्ध (विसुद्धिमग्ग)

भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयाऽन्नेन मर्त्याः।

(धरती पर के मरणधर्मा मानव स्व पुरुषार्थ से प्राप्त अन्न से ही जीवित रहते हैं।)

—अथर्ववेद

कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।)

(पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में है और सफलता मेरे बाएं हाथ में।)

—अथर्ववेद

कोसेज्जं भयतो दिस्वा, विरियारंभं च खेमतो।
आरद्धविरिया होथ, एसा बुद्धानु सासनी।।

(आलस्य को भय के रूप में और उद्योग को क्षेम के रूप में देखकर मानव को सदैव उद्योगशील पुरुषार्थी होना चाहिए—यह बुद्धों का अनुशासन है।)

—महात्मा बुद्ध (चरियापिटक)

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार, ननु तिर्यङ् निपद्यते।

(तू उठकर खड़ा हो और शयन करने वालों के मध्य उनकी रक्षार्थ सतत जागता रह, क्योंकि शयन करने वाला जीव तिरक्षा होकर लुढ़क जाता है।)

—अथर्ववेद

तथा स्वर्गश्च भोगश्च निष्ठा या च मनीषिता।
सर्वं पुरुषकारेण कृतेने होपलभ्यते।।

(इस जगत् में पुरुषार्थ करने से स्वर्ग, भोग, धर्म में निष्ठा और बुद्धिमत्ता—इन सब की उपलब्धि होती है।)

—महाभारत

पुष्पिण्यो चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः, श्रमेण प्रपथे हताः।।
चरैवेति···चरैवेति···

(चलते रहने वाले यात्री की जंघाएँ पुष्पिणी हो जाती हैं, सुगंधित सुमन के समान हर जगह निर्माण का सौरभ फैलाती हैं, सम्मान पाती हैं। चलते रहने वाले का जीवन निरन्तर विकाशील एवं आरोग्यादि फल से युक्त होता है। चलने वाले के सब पाप दोष राह में ही श्रम से विनष्ट होकर गिर जाते हैं।)

चले चलो···चले चलो···।

—ऐतरेय ब्राह्मण

अर्थो वा मित्तवर्गो वा ऐश्वर्यं वा कुलान्वितम्
श्रीश्चापि दुर्लभा भोक्तुं तथैवाकृत कर्मभिः।

(जो पुरुषार्थ नहीं करते, वे धन, मित्र वर्ग, ऐश्वर्य, श्रेष्ठ कुल तथा दुर्लभ लक्ष्मी का उपभोग नहीं कर सकते।) —महाभारत

आस्ते भग आसीनस्य, ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य, चराति चरतो भगः॥
चरैवेति · चरैवेति···

(बैठे हुए का भाग्य बैठा रह जाता है, उठता अथवा बढ़ता नहीं। उठकर खड़े होने वाले का भाग्य प्रगति हेतु उठ खड़ा होता है। जो आलसी धरा पर सोया पड़ा रहता है, उसका भाग्य भी चल पड़ता है, दिन-दिन बढ़ता जाता है।)

चले चलो···चले चलो···

—ऐतरेय ब्राह्मण

कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरन्॥
चरैवेति···चरैवेति···

(आलसी, निष्क्रिय कलियुग है, निद्रा त्यागकर जग जानेवाला द्वापर है, उठकर खड़ा होने वाला त्रेता है यौर कर्त्तव्य के संघर्ष पथ पर चल पड़ने वाला कृतयुग है।)

चले चलो···चले चलो···

—ऐतरेय ब्राह्मण

चरन् वै मधु विन्दति, चरन् स्वादुमुदुम्वरं।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाण, यो न तन्द्रयते चरन्॥
चरैवेति···चरैवेति

(चलने वाला ही मधु और सर्वोत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करता है। भास्कर की महिमा को देखिए कि वह चलता हुआ कभी थकान महसूस नहीं करता।)

···चले चलो···चले चलो

—ऐतरेय ब्राह्मण

विक्लवो वीर्यहीनो यः, स दैवमनुवर्तते।
वीराः संभावितात्मानो, न दैवं पर्युपासते॥
(जो डरे हुए और निर्बल हैं, वे ही भाग्य का आश्रय लेते हैं। वीर और आत्मनिष्ठ पुरुष भाग्य की ओर कभी नहीं ताकते।)

—वाल्मीकि रामायण

दैवं पुरुषकारेण, यः समर्थः प्रबाधितुम्।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषःसोऽवसीदति॥
(जो स्व पुरुषार्थ से भाग्य (दैव) को विवश कर देने में समर्थ हैं, वे मानव दैवी आपदाओं से कदापि दुखित नहीं होते।)

—वाल्मीकि रामायण

सप्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति।
कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्प चेतसा॥
(जो प्राप्त अपमान का स्वतेज द्वारा परिमार्जन नहीं करता, उसके चेतनाहीन महान् पौरुष का भी क्या अर्थ है?)

—वाल्मीकि रामायण

दैवे पुरुषकारे च लोकोऽयं सम्प्रतिष्ठितः।
तत्र दैवं तु विधिना कालयुक्तेन लभ्यते॥
(यह जगत् दैव और पुरुषार्थ पर आधारित है। इनमें दैव तभी सफल होता है, जब समय पर उद्योग किया जाए।)

—महाभारत

सर्वे हि स्वं समुत्थानमुपजीवन्तिः।
(सभी प्राणी स्व पुरुषार्थ एवं प्रयास के द्वारा ही जीवन धारण करते हैं, जीवनयात्रा चलाते हैं।)

—महाभारत

सर्वैरपि गुणैर्युक्तो निर्वीर्यः किम् करिष्यति ?
गुणी भूता गुणाः सर्वे तिष्ठन्ति हि पराक्रमे ।।

(जो बलहीन है, वह सर्वगुण सम्पन्न होकर भी क्या करेगा, क्योंकि सभी गुण पराक्रम के अंगभूत बनकर ही रहते हैं।)

—महाभारत

क्लीबस्य हि कुतो राज्यं दीर्घसूत्रस्य वा पुनः ।

(भीरु और आलसी मनुष्य को राज्य (ऐश्वर्य) कैसे प्राप्त हो सकता है ?)

—महाभारत

उत्थान वीरः पुरुषो वाग्वीरानधितिष्ठति ।

(जो मनुष्य उद्योग वीर है, वह कोरे वाग्वीर मनुष्यों पर अपना अधिकार कर लेता है।)

—महाभारत

श्येन एव भूत्वा सुवर्ग लोकं पतति ।

(श्येन के समान स्व लक्ष्य के प्रति शीघ्र झपट्टा मार उड़ान करने वाला साधक ही स्वर्ग पर आरोहण कर सकता है।)

—तैत्तिरीय संहिता

प्राक्तनं पौरुपं तद् वै दैवशब्देन कथ्यते ।

(पूर्वजन्म का पौरुष ही यहाँ इस जन्म में मनुष्य का दैव (भाग्य) कहलाता है।)

—योगवाशिष्ठ, मुमुक्षुप्रकरण

यो यमर्थं प्रार्थयते तदर्थं यतते तथा ।
सोऽवश्यं तमवाप्नोति न चेच्छान्तो निवर्तते ।।

(जो जिस चीज़ को चाहता है, उसके लिए प्रयास करता है और यदि थककर बीच में ही अपना विचार न परिवर्तित कर दे तो उसे अवश्य प्राप्त कर लेता है।)

—योगवाशिष्ठ, निर्वाणप्रकरण

शुभाशुभाभ्यां मार्गभ्यां वहन्ती वासनासरित्।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि॥

(शुभ एवं अशुभ राह से बह रही वासनामयी सरिता को स्वपुरुषार्थ के द्वारा अशुभ राह से हटाकर शुभ राह में लगाना चाहिएं।)

—योगवाशिष्ठ, मुमुक्षुप्रकरण

कृतं चाप्यकृतं किंचित्त कृते कर्मणि सिध्यति।
सुकृतं दुष्कृतं कर्म न यथार्थं प्रपद्यते॥

(प्रवल पुरुपार्थ से पूर्व का किया हुआ कोई भी कर्म बिना किया हुआ सा हो जाता है और यह प्रवल कर्म ही सिद्ध होकर फल प्रदान करता है। इस प्रकार पुण्य अथवा पाप-कर्म अपने यथार्थ फल को नहीं दे पाते हैं।)

—महाभारत

यथाग्निः पवनोद्धतः सुसूक्ष्मोऽपि महान् भवेत्।
तथा कर्म समार्युक्तं दैव साधु विवर्धते॥

(जैसे थोड़ी-सी भी अग्नि समीर का सम्बल पाकर बहुत बड़ी हो जाती है, उसी तरह पुरुषार्थ का सहारा पाकर दैव का बल विशेष बढ़ जाता है।)

—अज्ञात

पूर्वजन्म कृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात् पुरुषयत्नेन बिना दैवं न सिध्यति॥

(पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म ही भाग्य कहलाता है। अतः पुरुषार्थ किए बिना भाग्य का निर्माण नहीं हो सकता।)

—वाल्मीकि रामायण

पुरुषार्थहीन

विपदोऽभिभवन्त्यविक्रमं रहयत्यापदुपेतमायति ।
नियता लघुता निरायतेरगरीयान्न पदं नृपश्रियः ।।

(पुरुषार्थहीन पुरुष को मुसीवतें आक्रान्त कर लेती हैं। मुसीबतों से आक्रान्त होने पर उसकी भावी प्रगति रुक जाती है। जिससे उसका गौरव नष्ट हो जाता है। गौरव नष्ट होने पर राज्यश्री के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता, जिसका वह आश्रय ले सके।)

—भारवि (किरातार्जुनीय)

पुरुषार्थहीन मानव जीते जी मरा हुआ है।

—स्वामी शंकराचार्य

पुरोहित

पुरोहित पंडे हो स्वार्थांध अंधविश्वासों का बुन जाल,
नरक में जन को गए ढकेल देश को अंधकार में डाल।

—सुमित्रानन्दन पंत (लोकायतन)

जन्म की वधाई घर, नाम की धराई, पूजा,
मुंडन की और कर्ण-वेधन की पावेंगे।
ब्रह्म-दंड देंगे, लेंगे चरण-पुजाई, आगे,
ब्याह के अनेक नेग चौगुने चुकावेंगे ।।
लेते ही रहेंगे दान-दक्षिणा पुरोहित जी,
रोगी यजमान से दुधार धेनु लावेंगे।
शंकर मरे पै माल मारेंगे त्रयोदशा के,
छोड़ेंगे न बरसी, कनागत भी खावेंगे ।।

—नाथूराम शंकर (अनुराग रत्न)

पुष्प

भगवान वड़े-बड़े साम्राज्यों से ऊब उठता है किन्तु छोटे-छोटे पुष्पों से कभी खिन्न नहीं होता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं करणग्रहः।
तृतीयकं भूतदया चतुर्थं शांतिरेव च।।
शमस्तु पञ्चमं पुष्पं ध्यानं चैवतु सत्तमं।
सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः।।
एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यते चार्चितो हरिः।
पुष्पान्तराणि सन्त्येव वाह्यानि नृपसत्तम।।

(अहिंसा प्रथम, इन्द्रिय संयम दूसरा, जीवों पर दया करना तीसरा, क्षमा चौथा, शम पाँचवाँ, दम छठा, ध्यान सातवाँ और सत्य आठवाँ पुष्प है। इन पुष्पों के द्वारा ईश संतुष्ट होते हैं। नृप श्रेष्ठ! अन्य पुष्प तो पूजा के वाह्य अंग हैं, ईश उपर्युक्त आठ पुष्पों से ही पूजित होने पर उल्लसित होते हैं।)

—वेदव्यास (पद्म पुराण)

पुण्यसंवर्द्धनाच्चापि पापौघपरिहारतः।
पुष्कलार्थ प्रदानाच्च पुष्पमित्यभि धीयते।।

(पुष्प पाप समूह को दूर करते हुए पुण्य की अभिवृद्धि करता है तथा प्रचुर अर्थ को प्रदान करता है, अतः वह पुष्प नाम से पुकारा जाता है।)

—अज्ञात

न रत्नैनं सुवर्णेन न वित्तेन च भूरिणा।
तथा प्रसाद मायाति यथा पुष्पैर्जनार्दनः।।

(भक्तजनों के ऊपर कृपा रखनेवाले ईश प्रचुर रत्नराशि अथवा सुवर्ण के कोष से भी उतने प्रसन्न नहीं होते जितने भक्तों के दिए हुए पुष्पों के समूह से।)

—अज्ञात

पुस्तक

तुस्तकें जीते-जागते देवता हैं, उनकी सेवा करके तुरन्तु वरदान प्राप्त किया जा सकता है।

—अज्ञात

असभ्य राष्ट्रों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण विश्व पर पुस्तकों का ही शासन है।

—वाल्टेयर

कुछ पुस्तकें चलने मात्र की होती हैं, दूसरी निगाह डालने योग्य और कुछ ऐसी होती हैं जिन्हें चबाया और पचाया जा सके।

—वेकन

मैं नरक में भी अच्छी पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि उनमें वह शक्ति है कि जहाँ ये होंगी वहीं स्वर्ग वन जायेगा।

—लोकमान्य तिलक

नेत्रों के सम्मुख जो वस्तु पड़ी हुई है, उसे जानने के लिए भी हमें पुस्तकों का मुँह ताकना पड़ता है।

पुस्तकों के द्वारा जानने को ही हम पाण्डित्य समझ कर उसका गर्व करते हैं। विश्वजगत् को हम मन से नहीं छूते, पुस्तकों से छूते हैं।

वास्तव में 'मनुष्य' जब 'पुस्तक' वन जाने का प्रयास करता है तो उसमें से मनुष्य का अपना स्वाद जाता रहता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आवरण)

मानव चित्त के चहुँ ओर यह जो पुस्तकों के घने जंगल में 'वोलों' के वौर लगे हैं, उनकी स्मृति की गंध हमें मतवाला वनाए दे रही है; इधर से उधर दौड़ा-दौड़ा कर वह हमें वारम्वार परेशान और चकित किए मारती है किन्तु यथार्थ आनन्द और गम्भीर तृप्ति अथवा शांति नहीं देती उल्टा हम में नाना प्रकार के विद्रोह और मनोविकार पैदा करती रहती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आवरण)

पुस्तकों का संकलन ही आज के युग का वास्तविक विद्यालय है।

—कार्लाइल

पुस्तकें मन के लिए साबुन का कार्य करती हैं।

—महात्मा गांधी

अब तो हम यह भूल से गए हैं कि पुस्तक पढ़ना शिक्षा का फल एक सहूलियत का सहारा भर है, और कुछ नहीं। किन्तु अब तो हम पढ़ने को ही शिक्षा का एक मात्र उपाय समझ बैठे हैं। और इस विषय में हमारे संस्कार को डिगाना अथवा बदलना बहुत ही कठिन हो गया है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आवरण)

एक पुस्तक से दूसरी पुस्तक पैदा हो रही है, एक काव्य ग्रन्थ से और एक काव्य ग्रन्थ का जन्म हो रहा है। एक इंसान की राय मुँह जबानी सहस्रों की राय हुई जा रही है। नकल से नकल का स्रोत बहता चला जा रहा है। और इस प्रकार से पोथी और बातों का जंगल इंसान के चहुं ओर गहनतर होता जा रहा है। प्राकृतिक जगत के साथ उसका सम्बन्ध क्रमशः दूर होता चला जा रहा है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आवरण)

इस बात को हम मानते हैं मानव के ज्ञान और भावों को पुस्तकों में इकट्ठा करना एक बड़ी भारी सहूलियत है, किन्तु उस सहूलियत से मन की स्वाभाविक शक्ति को बिल्कुल ढक देना बुद्धि को 'रईस' बना देना है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आवरण)

इस प्रकार हमारा मन बचपन से ही पुस्तक पढ़ने के आवरण से दबा रहने से हम मानव के साथ सहज-स्वाभाविक भाव से मिलने-जुलने की अपनी शक्ति को खो रहे हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आवरण)

जो पन्ने गिनकर पुस्तकों का मूल्य देते हैं, उनका मन पुस्तक के बीच दबकर ही कब्र में पहुँचा है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

आज के लिए और सदा के लिए सब से बड़ा मित्र है अच्छी पुस्तक।

—टपर

अच्छी पुस्तकों के पास होने से हमें अपने भले मित्रों के साथ न रहने की कमी नहीं खटकती। जितना ही मैं पुस्तकों का अध्ययन करता गया उतना ही अधिक मुझे उनकी विशेषताएँ (उपयोगिताएँ) मालूम होती गईं।

—महात्मा गांधी

वह पुस्तक किस काम की, जिस की माँग न होय।
वन में नाचा मोर है, देख सकै न कोय॥

—मेलाराम (शिक्षा सहस्री)

ग्रन्थों में आत्मा है। सद्ग्रन्थों का कभी नाश नहीं होता।

—लिटन

अच्छी पुस्तक एक महान् आत्मा का अमूल्य जीवन-रक्त है।

—मिल्टन

पुस्तकें प्रकाश-गृह हैं जो समय के विशाल सागर में खड़ी की गई हैं।

—विपिल

पुस्तकें वे विश्वस्त दर्पण हैं जो संतों एवं शूरों के मस्तिष्क का परावर्तन हमारे मस्तिष्क पर करती हैं।

—गिब्बन

प्राचीन वस्त्र धारण कर नई पुस्तकें खरीदिए।

—प्रस्टिन फिलरस

विश्व एक महान् पुस्तक है जिसमें वे लोगजो कभी घर से बाहर नहीं निकलते केवल एक पृष्ठ पढ़ जाते हैं।

—आगस्टाइन

बुरी पुस्तकों का पठन विषपान के समान है।

—टालस्टाय

पुस्तकें जाग्रत देवता हैं, उनकी सेवा करके तत्काल वरदान प्राप्त किया जा सकता है।

—अज्ञात

जहाँ पुस्तकें हैं, वहाँ से लोभ, मोह, भ्रम और भय को भगाना कठिन नहीं।

—अनाम

सरस पुस्तक से रोग-पीड़ित व्यक्ति को बड़ी शांति मिलती है। जैसे स्नेहमयी माता की मीठी-मीठी थपकियाँ शिशु को निद्रा की गोद में सुला देती हैं।

—अज्ञात

पूजा

मनुष्य ही परमात्मा का सर्वोच्च साक्षात् मन्दिर है इसलिए साकार देवता की पूजा करो।

—स्वामी विवेकानन्द

लाखों गूँगों के हृदय में ईश्वर विराजमान है, मैं उसके सिवा अन्य किसी ईश्वर को नहीं मानता। वे इसकी सत्ता को नहीं मानते यह मैं जानता हूँ। मैं इन लाखों की सेवा द्वारा उस ईश्वर की पूजा करता हूँ जो सत्य है अथवा उस सत्य की जो ईश्वर है।

—महात्मा गांधी

पूजा शब्द का अर्थ सत्कार है। देव की पूजा कहने से परमात्मा का सत्कार करना, यह अर्थ होता है। चेतन पदार्थों का ही केवल सत्कार सम्भावित है, जड़ पदार्थों का अर्थात् मूर्तियों का सत्कार सम्भव नहीं होता। मुख्य तत्त्व से वेदमन्त्र पढ़ने से ईश्वर का सत्कार होता है।

—स्वामी विवेकानन्द सरस्वती

पूजा अपनी अनुराग-तृप्ति, सेवा बलि का जाग्रत विधान।
पूजा के पंख नहीं होते, सेवा छू लेती आसमान॥
पूजा मंदिर की मदिर गंध, सेवा पथ-ठोकर का निशान।
पूजा मधुवन का मधु गुलाब, सेवा भूखे का आत्मदान॥

—माखनलाल चतुर्वेदी (वेणु लो गूँजे धरा)

उपवास करना और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर प्रार्थना अथवा कीर्तन करने का नाम ही पूजा नहीं है। हृदय का निवेदन ही सच्ची पूजा है।

—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

अकुतोपद्रवः कश्चिन्महानपि न पूज्यते।
अर्चयन्ति नरा नागं न तार्क्ष्यं न गजादिकं॥

(बिना उपद्रव किए महान मानव की भी कोई पूजा नहीं करता। मानव सर्प की पूजा करते हैं न कि गरुड़, हाथी आदि की।)

—पंचतन्त्र

पेट

पापी पेट, तू सब कुछ कर सकता है। मान और अभिमान, ग्लानि और लज्जा ये सब चमकते हुए तारे तेरी काली घटाओं की ओट में छिप जाते हैं।

—प्रेमचन्द

जब पेट खाली होता है तो शरीर रूह बन जाता है और जब वह भरा होता है तो रूह शरीर बन जाती है।

—शेख सादी

पेट की ज्वाला ही बड़वाग्नि है जो कभी नहीं बुझती। उसे सब लोग नहीं अनुभव कर सकते। जो उत्तम पदार्थों की थाली पैर से ठुकरा देते हैं, जिन्हें अरुचि की डकार सदा आती रहती है, वे इसे क्या जानेंगे?

—जयशंकर प्रसाद

पेट ते आयो तु पेट को धावत हायों न हेरत घाम रू छाँहीं।
पेट दियौ जिहि पेट भरे सोइ 'ब्रह्म' भनैं तिहि ओर न जाहीं॥
पेट पयौसिख देतहि देत रे जापिउ पेट समाहीं।
पेट के काज फिरै दिन राति सु पेटहु से परमेसर नाहीं॥

—बीरबल (अकबरी दरबार के हिन्दी कवि)

उदर भरन के कारने, प्रानी करत इलाज।
नाँचै बाँचै रन भिरै, राँचै काज अकाज॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

भलो भयो घर ते छूट्यो हँस्य सीस परि खेत।
का के का के नवत हम अपन पेट के हेत॥

—रहीम (रहिमन विलास)

'रहिमन' अपने पेट सों, बहुत कह्यो समझाय।
जो तू अनखाये रहे, तो सों को अनखाय॥

—रहीम (रहिमन विलास)

पेट पालना है, तो हुक्म मानना ही पड़ेगा।

—प्रेमचन्द (बहिष्कार)

पेटुक-पेटू

अधिक भोजन लेने से चर्बी बढ़ती, बुद्धि नहीं।

—अज्ञात

पेट की भूख मिट जाने पर भी पेटुक की मन की भूख नहीं मिटती।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (सृष्टि)

अधिक भोजन लेना मृत्यु का मौन निमंत्रण है।

—अज्ञात

जो इंसान पेटू है उसे दो रातों तक नींद नहीं आती। एक रात तो पेट के बोझ के कारण और दूसरी रात भूख की चिन्ता में।

—अज्ञात

पोशाक (दे० वेशभूषा)

सादी पोशाक ब्रह्मचर्य पालन में मददगार होती हैं।

—महात्मा गांधी

साफ-सुथरी पोशाक में एक तरह की जवानी होती है जिसमें ज्यादा उम्र छिप जाती है।

—अज्ञात

अच्छी पोशाक के लिए सभी द्वार खुले रहते हैं।

—टामस फूलर

तुम्हारी पोशाक उतनी ही बहुमूल्य होनी चाहिए जितनी बनवाने को तुम्हारी क्षमता हो। वह बहुमूल्य तो हो पर भड़कीली न हो।

—शेक्सपियर

प्यार (दे० प्रेम, मुहब्बत)

प्यार की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें नारी जाति चट से समझ जाती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (अनाथ)।

वल और शक्ति की आज्ञा टालना आसान है, मगर प्यार की आज्ञा टालना आसान नहीं।

—सुदर्शन

पुरुषों का प्यार ही औरतों का बलबूता है, उनके जीवन का कारोबार ही उसी पूँजी से चलता है, लिहाजा उसकी हवा देखकर वे ठीक समय पर ठीक प्रकार से पाल घुमाती रहें तो उसकी नौका पार लग जाती है। इसलिए तो विधाता ने प्यार तोलने की तराजू स्त्रियों से हृदय में लटका दी है, पुरुषों को नहीं दी।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मणिहीन)

प्यार में सम्हल-सम्हल कर पैर रखना पड़ता है और मन की सब वात मुँह खोलकर कहते नहीं वनती, जिस प्यार का जवरदस्त खिंचाव सूरज और जमीन के खिंचाव की तरह बीच में एक बहुत बड़ी दूरी बहुत अधिक फासला रख देता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मणिहीन)

इस नये युग के प्यार में, ऐसी-ऐसी बहुत आवश्यक काम की बातों में भी, भावों की जड़ता उनका पीछा नहीं छोड़ती, उनके दिल में अरमानों का दर्द और उस दर्द में वेदना की कँपकँपी उठती ही रहती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मणिहीन)

प्यार के साथ नाराजगी बिना मिले तो प्यार का जायका ही नहीं मिलता, साग-तरकारी में नमक-मिर्च के बिना क्या मजा है—प्यार में भी चटपटे मसाले की आवश्यकता पड़ती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आँख की किरकिरी)

जरूरत राजा की तरह अपना पूरा समय लेती है और प्यार, प्यार तो कंगाल है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नौका डूबी)

प्यार एक प्यास है।

—जैनेन्द्र (जैं० क० भाग ९)

प्यार करने का हक पैसे वाले को है कंगाल को नहीं ? किसी की प्रतिष्ठा बने या बिगड़े ! इसकी उसे चिन्ता नहीं रहती।

—शरण (दीया, लौ और बाती)

प्यार सपने से होता है, सच से हो तो उसको सपना कर देता हैं। और सपने पर मन चलता है, काम नहीं चलता। सपने में मन से उड़ते हैं, सच पर पाँव से टिकते हैं।

—जैनेन्द्र (जै० क० भाग ८)

प्यार में से आदमी कष्ट पाता है और कष्ट देता है और कहीं किसी ओर किसी का वश नहीं चल सकता।

—जैनेन्द्र (जयवर्धन)

सब बीत जाता है पर प्यार जीता रहता है। कौन अपने प्रेम को भूल पाता है। इससे प्यार के जो लोग आए, मानवता उन्हें भूल नहीं सकी। वे सदा उसके अन्तरंग में धड़कते रहेंगे।

—जैनेन्द्र (जयवर्धन)

प्यार में व्यक्ति अनायास निस्व बनता है, अर्थात् स्वत्व को निछावर कर डालना चाहता है। प्यार के अतिरिक्त जब हम अपने पास कुछ रोक रखते हैं तो असल में उस बहाने अपने स्वत्व को ही अपने पास संचित और सुरक्षित बनाए रखना चाहते हैं।

—जैनेन्द्र (जै० क० भाग ६)

प्यार और बुद्धि दोनों एक साथ एक ही रंगभूमि में अभिनय नहीं कर सकते—प्यार की वेदी पर बुद्धि की कुर्बानी दे दी जाती है।

—अज्ञात

प्यार इंसान की सबसे बड़ी कमजोरी है।

—अज्ञात

जिसे हम प्यार करते हैं उसीके अनुसार हमारा रूप और आकार निर्मित होता है।

—गेटे

हम सब प्यार के लिए पैदा होते हैं। यही जिन्दगी का लक्ष्य है।

—डिजरायली

प्यार ही प्यार का इनाम है।

—ड्राइडेन

जिन्दगी एक सुमन है, प्यार उसका पराग।

—विक्टर ह्यूगो

प्यार और खाँसी छिपाये नहीं छिपती।

—हर्बर्ट

इंसान का प्यार उसके जीवन की एक भिन्न वस्तु है; किन्तु स्त्री के लिए उसका प्यार उसका सारा जीवन है।

—बायरन

प्यास

दैहिक प्यास के अतिरिक्त और भी एक प्यास इंसान में होती है। उसी प्यास की सूचना संगीत चित्र साहित्य आदि देते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (तथ्य और सत्य)

प्रकाश

प्रकाश की अति भी मानव नेत्रों के लिए अंधकार है और प्रकाश का अभाव भी मनुष्य नेत्रों के लिए अंधकार है।

—रामतीर्थ

प्रकाश जब काले बादलों का चुम्बन करता है तो वे स्वर्ग के फूल बन जाते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रकाश जब क्षीण हो जाता है तभी अद्‌भुत का प्रादुर्भाव होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साहित्य में नवीनता)

प्रकाश एक ऐश्वर्य है। जहाँ मनुष्य दीन है वहाँ प्रकाश नहीं है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साहित्य)

नया प्रकाश चाहिए, नया प्रकाश चाहिए
अतीत का सुवर्ण रचर
सजीव और लाभकर,
वही रखें, न रूढ़ि के निरर्थ दास चाहिए
गिरा, विचार, तर्क पर हमें न पाश चाहिए
विनाश की प्रथा मृषा हरे तथा विकास चाहिए।

—प्रभाकर माचवे (अनु-क्षण)

प्रकाश सच का प्रतीक है।

—जे० आर० लोवेल

प्रकाश प्रभु की छाया है।

—प्लेटो

प्रकृति-मानव-प्रकृति

मानव प्रकृति तनिक सा दोष देखते ही, कुछ क्षण पूर्व की सभी बातें भूल जाती है।

—शरच्चन्द्र (श्रीकांत, पर्व-१)

प्रकृति का यह एक साधारण नियम है, जो कभी नहीं बदलेगा कि योग्य अयोग्यों पर शासन करते रहेंगे।

—डायोनीसियस

प्रकृति के चरण चिह्नों पर चलो। उसका रहस्य है धैर्य।

—इमर्सन

पहले मानव प्रकृति का खिलौना था, आज उसका अधीश्वर है।

—अज्ञात

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दावे ना दबै, जानत सकल जहान ।।

—रहीम

प्रकृति अपरिमित ज्ञान का भंडार है, पत्ते-पत्ते में शिक्षा पूर्ण पाठ है, परन्तु उनसे लाभ उठाने के लिए अनुभव आवश्यक है।

—हरिऔध

प्रकृति ईश्वर की शक्ति का क्षेत्र है और और जीवात्मा उनके प्रेम का क्षेत्र है।

प्रकृति के क्षेत्र में जो लोग साधना करते हैं उन्हें शक्ति प्राप्त होती है, वे ऐश्वर्यशाली होते हैं, वे राज्य-साम्राज्य का विस्तार करते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (प्रकृति)

मानव प्रकृति के जो साधारण गुण हैं उनकी ओर लक्ष्य रखता है मनोविज्ञान और व्यक्ति विशेष की जो अनन्य साधारण प्रकृति है उसकी ओर दृष्टि रखता है साहित्य।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साहित्य में नवीनता)

मनुष्य के चलने के मार्ग में प्रकृति-मायाविनी धोखे की टट्टी बिछा सकती है, वह बेचारा बेधड़क चलते-चलते अनायास ऐसे स्थान पर पग रखता है जहाँ ढका हुआ गड्डा होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दो बहन)

जो कार्य प्रकृति के करने का है उसे मनुष्य हरगिज नहीं कर सकता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आवरण)

निरर्थकता के बहाने प्रकृति हमें जीवन-यात्रा में देह के व्यवहार की शिक्षा दिया करती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (तप और सत्य)

कुछ भी हो संसार आप चलता नहीं।
मरजाओ पर प्रकृति नियम टलता नहीं।।

—मैथिलीशरण गुप्त (किसान)

प्रकृति स्व प्रगति और विकास में रुकना नहीं जानती और अपना अभिशाप हरेक अकर्मण्यता पर लगाती है।

—गेटे

प्रकृति का आदेश मानकर ही हम उसका नेतृत्व करते हैं।

—बेकन

प्रकृति नीरवता से घृणा करती है।

—अज्ञात

प्रकृति किसी सुन्दरी वृद्धा के समान कुहरे की मोटी चादर ओढ़े निद्रा में मग्न थी। आकाश में चन्द्रमा मुँह छिपाए हुए वेग से दौड़ा चला जाता था, मालूम नहीं कहाँ ?

—प्रेमचन्द (सेवा सदन)

प्रकृति को गुप्त व्यापार से कुछ वैर है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

वाह्य प्रकृति अन्तः प्रकृति का ही विशाल आलेख है।

—स्वामी विवेकानन्द

हमारी प्रकृति ही शुद्ध-बुद्ध है। और वह प्रकृति नष्ट नहीं की जा सकती। हमारी मूल प्रकृति सदा वही वनी रहती है।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

प्रगति (दे० उन्नति)

पारस्परिक व्यवहार प्रगति का सार है।

—बक्स्टन

सारी मानवीय वस्तुएँ यदि प्रगति पर नहीं हैं तो उन्हें पीछे हटना होगा।

—गिबन

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफिर।
चल रहा है तारकों का
दल गगन में गीत गाता,
चल रहा आकाश भी है
शून्य में भ्रमता भ्रमाता,
पाँव के नीचे पड़ी
अचल नहीं, यह चंचला है,
एक कण भी, एक क्षण भी
एक थल पर टिक न पाता
शक्तियाँ गति की तुझे
सब ओर से घेरे हुए हैं,
स्थान से अपने तुझे
टलना पड़ेगा ही, मुसाफिर।
साँस चलती है तुझे

—बच्चन (सतरंगिणी, यात्रा यात्री)

प्रगति जीवन का चिह्न है, जिस में प्रगति नहीं वह शव के समान है।

—अज्ञात

प्रजा

जो व्यक्ति प्रजा के पैर बन कर चलता है, उसे कभी काँटे नहीं चुभ सकते।

—डॉ० रामकुमार वर्मा

प्रजा के लिए ही नृपोद्योग है, इसी के लिए राजा का योग है।
प्रजा-श्रेय ही सर्वदा ध्येय है, इसी से प्रजा-सम्मति ज्ञेय है॥

—मैथिलीशरण गुप्त (चन्द्रहास)

प्रजा के साथ मेल करके शत्रु के साथ लड़ना चाहिए। प्रजा-पालक राजा की प्रजा सेना के समान ही है।

—सादी (गुलिस्ताँ)

प्रजा का असंतोष राजनीति का अभिशाप है।

—डॉ० रामकुमार वर्मा

रहा न रावण-सा अभिमानी, रहे न राम लोक अभिराम।
रहा न कौरव कुल में, रहे न अर्जुन गुरु-घनश्याम॥
खोटे और खरे सब खाये, काल व्याल ने वदन पसार।
ऐसा सोच प्रजा पर प्यारे, करना पूरा-पूरा प्यार॥

—नाथूराम शंकर (वायस विजय)

प्रजा बहुत बुद्धिमान आलोचक से भी अधिक बुद्धिमान् होती है।

—बेन क्राफ्ट

प्रजा और राजा में बाप बेटे का नाता है।

—अज्ञात

प्रजातंत्र

मैं प्रजातंत्र में इसलिए विश्वास करता हूँ कि वह प्रत्येक मनुष्य की शक्ति को उन्मुक्त करता है।

—वुडरो विल्सन

प्रजातंत्र का अर्थ मैं यह समझता हूँ कि इसमें नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को आगे बढ़ाने का समान अवसर मिले।

—महात्मा गांधी

एक स्वतंत्रराष्ट्र में प्रजातंत्र को कार्यरूप में परिणत करने के लिएप हली शर्त यह है कि उसके कानूनों का पालन हो, चाहे हम उन्हें पसन्द करें या न करें।

—डॉ० कैलाशनाथ काटजू

कोई भी गुप्त बात प्रजातंत्र के वास्तविक अर्थ को बाधा पहुँचाती है।

—महात्मा गांधी

प्रत्येक व्यक्ति की अच्छाई ही प्रजातंत्रीय शासन की सफलता का मूल सिद्धान्त है।

— राजगोपालाचारी

प्रजातंत्र का रहस्य यान्त्रिक विधि से किसी रीति को बदल देने में नहीं है। इसमें हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है।

—महात्मा गांधी

हो सकती हैं प्रजातंत्र में भी कुछ त्रुटियाँ,
प्रासादों से हीन न होंगी उसमें कुटियाँ।
एक श्रमिक जो आज भूमि ही खन सकता है,
कल सुयोग्य हो वही राष्ट्रपति बन सकता है॥

—मैथिलीशरण गुप्त (राजा-प्रजा)

प्रजातंत्र के दोष वस्तुतः स्वयं हमारे।
होते हम क्यों पतित न परवशता के मारे॥

—मैथिलीशरण गुप्त (राजा-प्रजा)

प्रजातंत्र का अर्थ मैं यह समझता हूँ कि इसमें निम्न से निम्न और उच्च से उच्च मानव को प्रगति का समान अवसर मिले।

—अब्राहम लिंकन

प्रजातंत्रीय और तानाशाही शासन में अन्तर नेताओं के अभाव में नहीं है अपितु नेताओं को, बिना उनकी हत्या किए हुए परिवर्तित कर देने में है। शांतिपूर्वक सरकार बदल देने की शक्ति प्रजातंत्र की आवश्यक शर्त है।

— लार्ड विवरेज

प्रजातंत्र का अपना संगठन और शासन होना चाहिए; किन्तु व्यक्तिगत आजादी ही उसका प्राण है।

—सी० ई० ह्यूजेज

प्रजातंत्र का स्नेह समानता का स्नेह है।

—मान्टेस्क्यू

प्रजातंत्र ने साधारण श्रमिक को पहले से कहीं अधिक गौरव प्रदान किया है।

—सिनक्लेयर लुई

प्रजातंत्र का यह अर्थ नहीं है कि जितने अच्छे तुम हो उतना ही अच्छा मैं हूँ, वरन् तुम उतने ही अच्छे हो जितना अच्छा मैं हूँ।

—थेडोर पार्कर

प्रतिभा (दे० बुद्धि, प्रज्ञा)

यस्य नास्ति स्वयं प्रजा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्याम् विहीनस्य दर्पणः किम् करिष्यति॥

(जिस मानव की स्ववुद्धि नहीं हो, उसके लिए शास्त्र व्यर्थ है, जैसे दोनों नेत्रों से रहित अंधे मानव को दर्पण क्या करेगा ?)

—हितोपदेश

प्रतिभा लगातार दुःख सहने में है।

—लांगफेलो

प्रतिभा की शक्ति पर स्वच्छन्द वातावरण में स्वतंत्रापूर्वक श्वास ली जा सकती है।

—जे० एस० मिल

धीरज प्रतिभा का आवश्यक अंग है।

—डिजरायली

प्रतिभा में जो सबसे अच्छी बात होती है उसे वह सबसे पहले दे देती है और दूरदर्शिता सबसे बाद में देती है।

—लेवोटर

ऐसी कोई महान् प्रतिभा नहीं है जिसमें लगन का सम्मिश्रण न हो।

—अरस्तू

प्रतिभावान् व्यक्ति यदि नष्ट होता है तो बहुधा अपने ही द्वारा नष्ट होता है।

—जानसन

प्रतिभा एक प्रकार का आचरण है और आचरण भी एक प्रकार का आवरण है।

—नित्शे

प्रतिभा के माने हैं बुद्धि में नयी-नयी कोपलें फूटते रहना। नयी कल्पना, नया उत्साह, नयी खोज, नयी स्फूर्ति ये सब प्रतिभा के लक्षण हैं।

—विनोबा

लम्बी-चौड़ी पढ़ाई के नीचे प्रतिभा दबकर मर जाती है।

—विनोबा

प्रतिभा अपने प्रति अडिग ईमानदारी को कहते हैं।

—जैनेन्द्रकुमार

कैसे समझोगे कि कौन प्रतिभाशाली है?
प्रतिभा के लक्षण अनेक हैं, किन्तु, कभी जब
सभी गधे जब एक व्यक्ति पर लात चलायें,
अजब नहीं, वह व्यक्ति महा प्रतिभाशाली हो।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (नये सुभाषित)

प्रतिभा के साथ जब शुभ्र निष्ठा तथा लगन का मेल हो जाता है तो मानव गुण कस्तूरी गंध में बोलने लगते हैं।

—अज्ञात

प्रतिभा वह शक्ति है जो मानवनीय चक्षु में चकाचौंध पैदा कर देती है, गुप्त रूप से सिर्फ कठिन श्रम का नाम है।

—आस्टिन

प्रतिभा वही काम करती है जिसे वह करने के लिए बाध्य है तथा गुणी वही काम करता है जो वह कर सकता है।

—ओवेन मेरीडेथ

प्रतिभा जन्तजात होती है, वह सिखायी नहीं जाती।

—ड्राइडेन

प्रतिभा एक प्रतिशत प्रेरणा और निन्नानवे प्रतिशत श्रम है।

—टामस ए० एडिसन

सचाई के प्रति स्नेह ही प्रतिभा की पहली और आखिरी माँग है।

—गेटे

प्रतिभा अपनी राह स्वयं निर्धारित कर लेती है और अपना दीप स्वयं ले चलती है।

—विल्मट

प्रतिकार

विनसेउ दोष न करि प्रति दोषा। भयेउ रोष ते शान्त रोषा।
निर्बल कबहुँ न होत उदारा। तुम बलशील तजहु प्रतिकारा॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

प्रतिरोध

प्रतिरोध से बड़ी शक्तियाँ रुकती नहीं, प्रत्युत उनका वेग और भी भयानक हो जाता है।

—जयशंकर प्रसाद (विशाख)

प्रतिष्ठा

मानव प्रतिष्ठा उसकी छाया की तरह है। जब वह मानव के आगे चलती है तो बहुत बड़ी हो जाती है और जब उसके पीछे चलती है तो उसकी तुलना में बहुत छोटी हो जाती है।

—टालरेण्ड

प्रतिष्ठा बनाने में कई वर्ष लग जाते हैं, कलंक एक क्षण में लग जाता है।

—अज्ञात

पतिहि गएँ मति जाय, गएँ मति मान गरै जिय।
मान गरे गुन गरै, गरै गुन लाज जरै जिय॥
लाज जरे जस भजै, भजै जस धरम जाइ सब।
धरम गए सब करम, करम गए पाप बसै तब॥
पाप बसै नरकन परै, नरकन 'केशव' को सहै।
यह जानि देहुँ सरबसु तुम्हें, सुपीठ दएँ पति ना रहै॥

—आचार्य केशव (पंचरत्न, रत्नावली)

अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्ति की राह स्वयं को उस योग्य बनाने का प्रयास करना है जैसा कि तुम दूसरों की नज़रों में दीखना चाहते हो।

—सुकरात

विपक्षमखिली कृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पंकतां धूलि मुदकं नावतिष्ठते॥

(शत्रु का समूल नाश किए बिना प्रतिष्ठा की प्र्प्ति दुर्लभ है; (क्योंकि) जल धूल को कीचड़ बनाये बिना नहीं ठहरता।)

—माघ (शिशुपाल वध)

प्रतिज्ञा (दे० प्रण)

शिवि दधीचि बलि जो कछु भाखा।
तन धन तजेउ वचन प्रण राखा॥

—तुलसी (मानस)

काले-रूपी खंडहरों में एक विषादमयी वाणी निवास करती है। रात्रि में वह मुझसे गा-गाकर कहती है—"मैं तुम्हें प्यार करती थी"।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाय पर वचन न जाई।

—तुलसीदास

दृढ़ प्रतिज्ञा एक गढ़ के सदृश है जो भयानक प्रलोभनों से हमारी रक्षा करता है और दुर्बलता एवं अस्थिरता से हमें बचाता है।

—महात्मा गांधी

प्रतीज्ञाहीन जीवन बिना नीव का घर है, अथवा यों कहिए कि कागज का जहाज है। प्रतिज्ञा के बल ही संसार टिका हुआ है। प्रतिज्ञा न लेने का अर्थ अनिश्चित या डांवाडोल रहना है।

—महात्मा गांधी

वरु सूरज पच्छिम उगे, विंध्य तरै जल माहिं।
सत्यवीर जन पै कबहुँ, निज वच टारत नाहिं॥

—भारतेन्दु (नाटकावली)

सूर समन्त चढ़ैं रन ऊपर, ते पुनि कोटि करौ विचलै ना।
बात यहै सिरदारन की, मुंहते कहि के कबहुँ बदलै ना॥

—जगनिक (आल्हखण्ड)

प्रतीक्षा (दे० इन्तजार)

प्रतीक्षा में जो आनन्द है, वह प्राप्ति में नहीं।

—अज्ञात

प्रतीक्षा का एक-एक पल एक-एक युग के समान होता है।

—अज्ञात

वह मजा वस्लेयार में नहीं जो मजा इन्तजार में है।

—अज्ञात

प्रथा-कुप्रथा

ऐसी लोक प्रथा का बुरा हो, जो अभागिनी कन्याओं को किसी न किसी पुरुष के गले बाँध देना अनिवार्य समझती है।

—प्रेमचन्द (नरक का मार्ग)

प्रथाओं की गुलामी इच्छाओं की गुलामी से श्रेष्ठ है।

—प्रेमचन्द (प्रेमाश्रम)

कोई कुप्रथा उन्हें उपेक्षा या निर्दयता से नहीं मिटती। उसका नाश, शिक्षा, ज्ञान और दया से होता है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

प्रधानमंत्री

प्रधानमंत्री के लिए सबसे आवश्यक गुण धीरज है।

—पिट

अच्छी प्रकार से राष्ट्र-शासन करने वाले प्रधानमंत्री के लिए अधिक सुनना और कम बोलना बहुत आवश्यक है।

—रिचलू

शान्त स्वभाव का होना प्रधानमंत्री का सबसे आवश्यक गुण है।

—एन्ड्री मारिस

प्रभात (दे० प्रातः, सवेरा)

प्रभात की उपासना मेंप्रतिदिन अपने अन्तःस्थिर मानवता के महात्म्य को हम एकदम वाधा-मुक्त होकर देख सकते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (प्रभात)

प्रभाव

मानव के अन्तःकरण में मानव का प्रभाव चहुँ ओर से आता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साहित्य में नवीनता)

ईश गिरिजा जो छोड़ यीशु गिरिजा में जाय,
'शंकर' सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे।
बूट पतलून कोट कम्फटर-टोपी डाट,
जाकट की पाकट में 'वाच' लटकावेंगे ॥
घूमेंगे घमंडी बने रंडी का पकड़ हाथ,
पियेंगे बरण्डी मीट होटल में खायेंगे।
फारसी की छारसी उड़ाय इंगरेजी पढ़,
मानो देव नागरी का नाम ही मिटावेंगे ॥

—नाथूराम शंकर

प्रभु (दे० ईश्वर, भगवान्, परमेश्वर)

चिड़ियों को दाना मिले शिशु को पय की धार;
प्रभु सब की चिन्ता करे, नाहक तू बेजार।

—श्रीमन्नारायण (रजनी में प्रभात का अंकुर)

देह देवरा पूजियो, तीन लोक तिन माँह।
तीरथ षटदर्सन सँच्यो, नेरे बैठे नाँह ॥

—बरकत उल्लाह 'प्रेम' (प्रेमप्रकाश)

दया दीनता दास भाव बिनु 'व्यास' न हरि पहिचान्यौ ॥

—व्यास वाणी

जुआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस परनार।
जो चाहैं दीदार को, एती वस्तु निवार ॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली)

प्रभु की प्ररिभाषा करना चर्वित चर्वण है; क्योंकि एकमात्र परम अस्तित्व, जिसे हम जानते हैं, वही है।

—स्वामी विवेकानन्द

सुख में न तुमको याद करता है मनुज की गति यही,
पर नाथ पड़ कर दुःख में किसने पुकारा है नहीं।
सन्तुष्ट बालक खेलने से तो कभी थकता नहीं,
कुछ क्लेश पाते, याद पड़ जाते पिता-माता वहीं ॥

—जयशंकर प्रसाद (कानन-कुसुम)

प्रभु है और सर्वत्र है, इस तथ्य का हमारे ज्ञान में अभाव नहीं है; किन्तु हम में अपने दैनिक जीवन में इस तरह आचरण करते हैं कि वह कहीं है ही नहीं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (संशय)

प्रभु को यदि प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें किसी न किसी सम्बन्ध द्वारा ही पा सकते हैं; नहीं तो वह केवल एक दर्शन के तत्त्व रह जायेंगे, न्यायशास्त्र का सिद्धान्त बनकर रह जायेंगे हमारे अपने नहीं बन पायेंगे।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नमस्तेऽस्तु)

प्रभुता

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।

—तुलसीदास

निरंकुश शक्ति की क्षुधा उपयोग से बढ़ती है।

—जवाहरलाल नेहरू

प्रभुता को सब कोई भजै, प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय।।

—कबीर

प्रभुता पाते ही लोगों की निगाहें बदल जाती हैं, किसी को पहचानते तक नहीं, जमीन पर पाँव तक नहीं रखते।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

प्रभुत्व और पशुता में फूल चिंगारी का सम्बन्ध है।

— प्रेमचन्द (कायाकल्प)

प्रभुता पर सभी को प्रमाद होता है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

इस प्रभुता के हेतु न जाने,
कहाँ-कहाँ है छिड़ी लड़ाई।
इस प्रभुता के हेतु भिड़ पड़ा;
इस जग में भाई से भाई।।

—बलदेव प्रसाद मिश्र (साकेत संत)

प्रभुता विनाशकारी प्लेग के समान है, वह जिसे स्पर्श करती है उसे ही भ्रष्ट करती है।

—शेली

प्रभुता भ्रष्ट करती है और पूर्ण प्रभुता पूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है।

—लार्ड आक्टन

प्रभुता ऐसी सुरा है जिसे पीनेवाला ही उन्मत्त नहीं होता प्रत्युत उसके परिवार, सम्बन्धी एवं पड़ोसी भी उन्मुत्त हो जाते हैं।

—अज्ञात

असीम वल धारण कर्ता को ही भ्रष्ट करता है।

—विलियम पिट

प्रयास (प्रयत्न)

महान् ध्येयके प्रयास में ही आनन्द है और किसी अंश तक प्राप्ति की मात्रा भी है।

—जवाहलाल नेहरू

जलकणों का अविच्छन्न प्रपात पाषाण में भी छिद्र कर देता है।

—अज्ञात

आनन्द की दृष्टि से देखें तो साक्षात् स्वराज्य की अपेक्षा स्वराज्य प्राप्ति के प्रयास का आनन्द कुछ और ही है।

—विनोबा

के वा न स्युः परिभव पदं निष्फलारम्यभत्नाः।

(निष्फल प्रयत्न करने से विश्व में किसी की पराजय नहीं होती।

—कालिदास

सच्चा प्रयास कभी निष्फल नहीं होता।

—विल्सन

आदर्श को पकड़ने के लिए सहस्र बार आगे बढ़ो और यदि तुम सहस्र बार असफल हो जाओ फिर भी एक बार नया प्रयास अवश्य करो।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

निरन्तर पानी की बूंदों के गिरने से पत्थर में गड्ढा हो जाता है। और शनै. शनैः चोट मारने से बड़े-बड़े पेड़ भी काट डाले जाते हैं।

—अज्ञात

प्रयोग

त्रिगुणात्मक है जगत, यहाँ है,
कोई नहीं पदार्थ हानिकर,
भला बुरा उनका प्रयोग ही,
है सुख दुःख का हेतु यहाँ पर।
सदुपयोग से विष पावक भी,
हो जाते हैं सुख-उत्पादक,
किन्तु अबुध अनुचित प्रयोग से,
कर लेते हैं उन्हें विघातक।

—रामनरेश त्रिपाठी (स्वप्न)

प्रयोजन

प्रयोजन के सम्बन्ध में अतीत जो कुछ है उसे वह नहीं देख पाता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (विश्वव्यापी)

विश्व में कोईप्रयोजन लेकर किसी मानव के पास जाना हमारे जीवन में एक अल्पता ही है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (अभाव)

प्रयोजन के दावे अत्यन्त प्रबल हैं और वे असंख्य हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साहित्य तत्त्व)

प्रलोभन (दे० लालच)

प्रलोभनों के प्रतिरोध का प्रत्येक क्षण ही एक महान विजय है।

—फेबर

शुरू के झगड़ों और प्रलोभन को यदि मनुष्य जीत ले तो समग्र प्रकृति को चेरी बनना पड़ेगा।

—स्वामी रामतीर्थ

प्रलोभन का अभाव सद्‌गुण का अभाव है।

—गेटे

कुछ प्रलोभन परिश्रमी मनुष्य हो सकता है; परन्तु सारे प्रलोभन आलसी मनुष्य पर ही हमला करते हैं।

—स्पर्जन

प्रवृत्ति (दे० आदत)

धर्म का भले ही नाश हो रहा हो, जातीय जीवन भले ही रसातल को ज़ा रहा हो, देव मंदिरों को भले ही ईंट से ईंट बज रही हो, परन्तु नीच प्रवृत्ति का व्यक्ति अपनी स्वार्थ निद्रा से जागता नहीं।

—गुरु गोबिन्दसिंह

सफलता उन्हीं को प्राप्त होती है, वही मन चाहा काम कर सकते हैं, जिनकी प्रवृत्ति निश्चयात्मक है।

—स्वेट मार्डन (मिरेकल्ज ऑफ राइट थॉट)

हमारी वर्तमान प्रवृत्तियाँ हमारे पिछले विचारपूर्वक किए गए कर्मों का परिणाम है।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

प्रश्न

प्रश्न में जिज्ञासा है, अभीप्सा है। उससे आदमी बढ़ता और ऊपर को उठता है; किन्तु वही जब संशय बन जाए तब वह खाने लगता है।

—जैनेन्द्र

प्रशंसा (दे० बड़ाई)

मुंह पर जो प्रशंसा करते हैं, और दूसरों के सामने जो अपनी निन्दा में प्रवृत्त होते हैं,वे अन्य का उत्तर पाने की आशा मे ही बहुत कुछ असंकोच अत्युक्ति कर डालते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (ताराचन्द की करतूत)

लोक-प्रशंशा प्रय: सभी को प्रिय हीती है।

—प्रेमचन्द (प्रतिज्ञा)

अपनी तारीफ सुनकर हम इतने मतवाले हो जाते हैं कि फिर हममें विवेक की शक्ति ही लुप्त हो जाती है। बड़े से बड़ा महातमा भी अपनी प्रशंसा सुनकर फूल उठता है। हाँ, प्रशंसा करने वाले शब्दों में भक्ति भाव रहना आवश्यक है। यदि ऐसे न होता तो कवियों को झूठी तारीफों के पुल बाँधने के लिए हमारे राजे महाराजे पुरस्कार क्यों देते?

—प्रेमचन्द (प्रतिज्ञा)

प्रशंसा के वचन साहस बढ़ाने में अचूक औषध का काम करते हैं।

—अज्ञात

प्रशंसा की भूख जिसे लग जाती है, वह कदापि तृप्त नहीं होता।

—अज्ञात

आप हर इंसान का चरित्र बता सकते हैं, यदि आप देखें कि वह प्रशंसा से कैसा प्रभावित होता है।

—सेनेका

हर इंसान प्रशंसा चाहता है।

—लिंकन

अयोग्य व्यक्तियों की प्रशंसा छिपे हुए व्यंग्य के समान होती है।

—ब्राडहर्स्ट

प्रशंसा के हर अनुराग पर ही हमेशा किसी जाति का महान् प्रयत्न आधारित रहा है, जैसे उसका पतन विलासिता के प्रति अनुराग में रहा है।

—रस्किन

प्रशंसा प्रार्थना से अधिक दिव्य है; प्रार्थना स्वर्ग की राह दर्शाती है, प्रशंसा वहाँ पहले से ही मौजूद रहती है।

—यंग

मानव के अन्दर जो कुछ सर्वोत्तम है उसका विकास प्रशंसा तथा प्रोत्साहन से ही किया जा सकता है।

—चार्ल्स श्वेब

प्रशंसा अच्छे गुणों की छाया है; किन्तु जिन गुणों की छाया है उन्हीं के अनुसार उसकी योग्यता भी होती है।

—बेकन

किसी के गुणों की प्रशंसा में अपना वक्त फजूल में न गवांओ, उसके गुणों को अपनाने का प्रयास करो।

—कार्लमार्क्स

प्रतिद्वन्द्वी द्वारा की गई प्रशंसा सर्वोत्तम कीर्ति है।

—टामस मूर

सोने और हीरे के समान, प्रशंसा का मूल्य सिर्फ उसके दुर्लभत्व में ही होता है।

—एस० जानसन

प्रशंसा वहाँ आरम्भ होती है जहाँ परिचय समाप्त होता है।

—एस० जानसन

हम प्रशंसा, आशा और स्नेह से जीते हैं।

—वर्ड्सवर्थ

प्रशासक

नरपतिहितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्त्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः
इति महति विरोधे वर्त्तमाने समाने
नृपति जनपदानां दुर्लभः कार्यकर्त्ता ।।

(जो शासन का साथ देता हैं, वह जनता का द्वेषी बन जाता है, जो जनता के हित के विजय में बोलता है, वह शासन की दृष्टि में खटकता है। सब जगह इस विरोध के रहते शासन और जनता दोनों के लिए समान रूप से प्रिय कार्यकर्त्ता (प्रशासक) दुर्लभ है।)

—पंचतंत्र

अनुक्रमणिका

ग्रंथकारों की नामावली